महाभारत के पात्र

[पहला भाग]

लेखक

आचार्य श्री नानाभाई भट्ट

अनुवादक

बृहस्पति उपाध्याय

प्रस्तावना-लेखक

श्री वियोगी हरि

हिं दी मं दि र, प्र या ग

हिंदी मंदिर के लिए
नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर
द्वारा प्रकाशित

चौथी बार, १९४८
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
अमरचन्द्र,
राजहंस प्रेस, दिल्ली २-४८

पहले संस्करण की प्रस्तावना

प्रसिद्ध है कि जो भारत (महाभारत) में नहीं वह भारत भर (भारत-वर्ष) में नहीं है। महाभारत हमारे साहित्य-मन्दिर का कलश है। यह बृहद् ग्रन्थ इतिहास है, काव्य है, धर्म-ग्रन्थ है, बल्कि पांचवां वेद है। आर्यावर्त्त के उत्थान और पतन दोनों ही प्रकरणों का इस महान् ग्रन्थ में बड़ी खूबी के साथ दिग्दर्शन हुआ है। भारत की धर्मगर्भा तेजस्विनी संस्कृति आज लोप हो जाती, यदि भगवान् कृष्ण द्वैपायन महाभारत के अन्दर उसकी अमर प्रतिष्ठा न कर गये होते। इस 'जय' (महाभारत) की एक-एक पंक्ति में अधर्म और असुन्दर पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है इसका सनातन सन्देश मानव-कुल को दिया गया है। जिस ग्रन्थ का एक भाग भगवद्गीता हो उसकी महत्ता के विषय में कुछ लिखना व्यर्थ-सा मालूम देता है।

महाभारत महान् है—इतना महान् कि उसका समुचित अध्ययन करना कठिन-सा है। विदेशी भाषाओं में भी महाभारत के कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं, भारतीय भाषाओं में तो, बल्कि कहना चाहिए कि उतना अच्छा प्रयास अब तक नहीं हुआ है। खासकर इस ग्रन्थ की मीमांसा या विवेचना, एकाध निबंध को छोड़कर कुछ बहुत गम्भीरता से नहीं हुई है। प्राचीन टीकाएं आधुनिक युग के अनुकूल नहीं बैठतीं। वैज्ञानिक विश्लेषण के बगैर हमें आज कोई भी पुरानी चीज पूरा-पूरा सन्तोष नहीं देती। राम और कृष्ण की अमर-कथाओं को भी हम आज केवल कथा के रूप में नहीं देखना चाहते। यद्यपि मैं इस बात का विरोधी हूं कि प्राचीन-से-प्राचीन कथाओं का मेल माध्यमिक काल या आधुनिक काल की आवश्यकताओं के साथ जैसे-तैसे बिठाया जाय, जैसे तुलसीदास को हिन्दू-संगठन का लोक-नेता कहा जाय या गीता के श्लोकों में से आतंकवाद का समर्थन खोजने की चेष्टा की जाय। फिर भी इतना मैं मानता हूं कि

एक युग की कड़ियां दूसरे युग की कड़ियों से जुड़ी हुई होती हैं। और हम जिस युग में पैदा हुए हैं उसमें भी हम रामायण और महाभारत से मुक्ति-सन्देश प्राप्त कर सकते हैं। लोकमान्य तिलक ने गीता से आतंकवादियों को सन्तोष देने के लिए कोई ऐसा मामला नहीं ढूंढ़ निकाला है कि जिसके कारण उनकी आंखें गीता पर गड़ जायं। लेकिन अपनी अपूर्व प्रतिभा के बल पर गीता को कोरे पाठ-पूजन के दायरे से बाहर निकाल कर आधुनिक और भावी-युग को सन्तोष दिलाने वाली एक अनुपम पुस्तक के रूप में जरूर हमारे सामने रख दिया है।

महाभारत का भीम-कलेवर देखकर ही लोग प्राय. घबरा जाते हैं। किसी-किसी को उसमें असंगति दोष भी नजर आता है। जरूरत इस बात की है कि महाभारत को ऐसे रूप में जनसाधारण के सामने रखा जाय कि आधुनिक युग उसमें अनुकूलता देख सके और सन्तोष तथा मार्ग-दर्शन भी उससे प्राप्त हो सके। महाभारत के एक-एक पात्र पर हृदयाकर्षक विवेचन किया जाय। वर्णन करने का ढंग अपना हो, पर रङ्ग वही बना रहे। बच्चों के लिए वह कहानी का मजा दे, युवकों को क्रान्ति का दर्शन कराये, वृद्धों की विवेचना-शक्ति को आहार दे, तो समझना चाहिए कि वाङ्मय के मन्दिर में हमने महाभारत का यथेष्ट आदर किया और मानव-जाति को आर्यावर्त्त की संस्कृति का यथेष्ट दान भी दिया।

संतोष की बात है कि इस प्रकार के प्रयत्न का श्रीगणेश हो चुका है। भावनगर (काठियावाड़) की सुप्रसिद्ध शिक्षण-संस्था दक्षिणामूर्त्ति विद्यामन्दिर के आचार्य श्री नृसिंहप्रसाद कालिप्रसाद भट्ट ने महाभारत सुविख्यात तेरह पात्रों पर बड़े आकर्षक ढङ्ग से ग्यारह पुस्तकें लिखी हैं, और वे दक्षिणामूर्ति प्रकाशन-मन्दिर से प्रकाशित हुई हैं। शैली में निश्चय ही चमत्कार है। यत्र-तत्र हमारे राष्ट्रनिर्माण के कार्य में सहारा देने वाले अनेक सुन्दर और तेजस्वी वाक्य इन पुस्तकों में आये हैं। धर्म और अधर्म का, कर्तव्य और अकर्तव्य का, हिंसा और अहिंसा का, नीति और अनीति का इस खूबी और सादगी से विवेचन किया गया है

कि मुंह से हठात् साधुवाद निकल आता है।

'सस्ता साहित्य-मण्डल' की सूक्ष्म दृष्टि 'दक्षिणामूर्ति' के इस साहित्य पर पड़ी और यह बड़े सन्तोष की बात है कि 'मण्डल' ने महाभारत के तीन पात्रों की कहानियां हिन्दी-पाठकों के लिए भी प्रस्तुत कर दी हैं। अनुवाद अच्छा हुआ है और उसमें मूल के प्रवाह और शैली की रक्षा का पूरा प्रयत्न किया गया है, लेकिन ऐसा करते हुए शायद असावधानी से कहीं-कहीं पर ठेठ गुजरातीपन आगया है। फिर भी कानों को यह दोष खटकेगा नहीं।

कर्ण, पांचाली और दुर्योधन इन तीन पात्रों की कथाओं का प्रस्तुत पुस्तक में संकलन है। रामायण के सम्बन्ध में जब हम कुछ सोचते या पढ़ते हैं तब प्रायः राम और सीता ये दो ही पात्र हमारे सामने आते हैं और आने ही चाहिएं। किन्तु रावण को तो हम दुरात्मा के ही रूप में देखने के आदी हो गये हैं। इसी तरह दुर्योधन का भी एक दुष्ट और अधम राजा के रूप में ही हमें दर्शन होता है। यद्यपि रावण भी महात्मा था और दुर्योधन भी एक महावीर और धर्माचारी भी था। समीक्षा की दृष्टि से हम देखें तो महाभारत को पूर्ण बनाने के लिए जितनी आवश्यकता युधिष्ठिर, अर्जुन और कृष्ण की है उतनी ही आवश्यकता दुर्योधन कर्ण और द्रोण की भी है। दुर्योधन का विश्वास ईश्वर की सत्ता और ईश्वर की इच्छा पर, युधिष्ठिर और अर्जुन की अपेक्षा, कुछ अधिक ही था। रणभूमि में पड़ा हुआ आहत दुर्योधन कहता है:—

"दूसरों को धोखा दिये बगैर जैसा मैं था वैसा ही दिखाने का जीवन-भर मैंने प्रयत्न किया है, और इसीमें मुझे शान्ति है। पांडवों ने धर्म का ढोंग करके लोगों में प्रतिष्ठा प्राप्त की और आज कौरवों का साम्राज्य भी प्राप्त करेंगे। लेकिन गुरु-पुत्र, मनुष्य-मात्र के हृदय में परमेश्वर ने धर्म और अधर्म को नापने का जो विचित्र यन्त्र रक्खा है, उस यन्त्र की बतायी हुई बात कभी झूठी नहीं होती। संसार में अगर ईश्वर जैसी कोई वस्तु होगी, तो याद रखना अश्वत्थामा, मैं तो आज क्षत्रियों की सेज

पर सोकर स्वर्ग में जाता हूं, लेकिन इस सनातन ब्रह्मचारिणी पृथ्वी के पति पांडव भी अन्त में मेरी ही दशा को प्राप्त होंगे।"

यह किसी दुरात्मा के नहीं किसी महात्मा के ही उद्‌गार हो सकते हैं। और व्यास जैसे धर्म-व्याख्याता की लेखनी से ही इस प्रकार शत्रु के प्रति भी पूर्ण अहिंसक की दृष्टि रखकर आदर-भाव प्रगट किया जा सकता है।

यह छोटी सी पुस्तक हिन्दी-संसार का समुचित प्रेम और आदर पायेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

हरिजन निवास
किंग्स्वे, दिल्ली।

वियोगी हरि

सूची

महाभारत के पात्र

सूतपुत्र कर्ण

: १ :

राधेय

अधिरथ महाराज धृतराष्ट्र का सारथी था। उनकी स्त्री का नाम था राधा।

उस ज़माने में रथ हाँकने का पेशा सूत जाति के लोग करते थे। लेकिन युद्ध के समय में रथ हाँकने का काम इतनी ज़िम्मेदारी का समझा जाता था कि कई बार बड़े-बड़े समर्थ पुरुष भी इस काम को गौरवपूर्ण समझकर इसे करते थे। श्रीकृष्ण स्वयं अर्जुन के सारथी हुए और मद्र-देश के राजा शल्य ने सूतपुत्र कर्ण का रथ हाँका था।

राधा के कोई सन्तान नहीं थी। ज़िन्दगी भर उसने न जाने कितने व्रत किये, तीर्थ-यात्राएं कीं, मिन्नतें मानीं, उपचार किये लेकिन ईश्वर ने राधा की गोद नहीं भरी। बिना सन्तान राधा का जीवन सूना-सा बन गया। किसी बालक को गोद लेकर भी राधा अपना मन बहला सकती थी लेकिन किसी का बालक इतना फालतू हो तब न!

एक रोज़ शाम को अधिरथ बाहर से घर आये। राधा अंदर भोजन बना रही थी।

"राधा, देख तो मैं तेरे लिए यह खिलौना लाया हूँ।" अधिरथ ने पुकारा।

"जब खिलौने से खेलनेवाला ही कोई नहीं है तो ऐसे खिलौनों से क्या लाभ?" राधा रसोईघर के अंदर से एक लम्बी सांस लेकर बोली।

"पर तू देख तो सही ! यह खिलौना तो बहुत ही सुन्दर है।"

"इससे भी सुन्दर-सुन्दर खिलौने तुम लाये हो, लेकिन ये तो मेरे दिल को जलाते ही हैं। तुम पुरुष लोग यह नहीं समझ सकते कि हृदय का स्नेह पान कराने के लिए कोई बालक न हो तो स्त्री का दिल कैसा सूख जाता है। इसका अनुभव तो अगले जन्म में जब कभी स्त्री बनोगे तब तुमको होगा।"

"पर जीजी देख तो"–राधा की बहन बोली—"यह तो सचमुच बड़ा ही सुन्दर है। तुम्हें बहुत अच्छा लगेगा।"

"ऐसे निर्जीव मिट्टी के पुतलों को जीवित मानकर अपना दिल बहलाने जैसी बालक अब मैं नहीं रही। स्वामी, मुझसे मज़ाक मत किया करो और मैं कहे देती हूँ कि अब आगे से ऐसे निर्जीव पुतले मेरे लिए मत लाया करो।" राधा उदास होकर बोली। उसका गला भर आया।

"पर बहन, यह पुतला तो निर्जीव नहीं है।"

'क्या कहा ? निर्जीव नहीं तो क्या सजीव है ? सच कहती हो—?' कहकर रसोईघर से राधा दौड़ती हुई बाहर निकली और अधिरथ के हाथ में बालक को देखकर वह एकदम चकित होगई।

"स्वामी, मैं यह क्या देख रही हूँ ?"

"तुम्हीं बताओ कि तुम क्या देख रही हो।"

"तुम्हें यह कहाँ से मिला ?"

"तुम्हीं बताओ ?"

"तुम्हारे हाथ में तो बालक है ! भगवान् ने सचमुच मेरे लिए यह खिलौना भेजा है ? स्वामी, यह स्वप्न तो नहीं है ? मेरी आँखें मुझे धोखा तो नहीं दे रही हैं ? देखो मुझसे मज़ाक मत करना, समझे।"

"नहीं, नहीं। मेरे हाथ में यह बालक है और इसे मैं तुम्हारे ही लिए लाया हूँ। यह लो।"

राधा पागल जैसी हो गई। उसने जल्दी से बालक को अपने हाथ में ले लिया और उसे अपनी छाती से लगा लिया। उसका सिर सूंघा,

उसको धीरे से प्यार किया और उसके सारे शरीर पर अपना हाथ फेरा।

"बेटा, तूने मेरे घर में उजाला कर दिया। इस अंधेरे मकान में प्रकाश फैला दिया है। बहिन जाओ, आज सारे मुहल्ले में शक्कर बांटो। कह दो कि राधा आज मां बन गई है।"

"लेकिन स्वामी यह तो बताओ कि तुम्हें यह मिला कहाँ से?" राधा की बहिन ने अधिरथ से पूछा।

"हाँ, स्वामी मैं यह तो आपसे पूछना भूल ही गई।"

"मैं अभी नदी के किनारे घूम रहा था कि नदी के प्रवाह में मैंने कुछ तैरता हुआ देखा।" अधिरथ ने कहा।

"ऐं—क्या कहा? तो क्या इसे किसी ने बहा दिया था?"

"पहिले तो मुझे ऐसा लगा कि शायद कोई मुरदा होगा या कोई लकड़ी होगी। लेकिन जब मैंने गौर से देखा तो पता चला कि एक पेटी बही जा रही है।"—अधिरथ कहता रहा।

"फिर!"

"नदी के प्रवाह के साथ पेटी धीरे-धीरे बह रही थी। मैंने सोचा कि देखूं इस पेटी के अन्दर क्या है? लेकिन वह दूर थी। उसके पास जाने लगा तो आगे पानी ज्यादा गहरा होने लगा।

"तो फिर क्या तुम अन्दर कूद पड़े?"

"नहीं, मैं किसी रस्सी या लम्बे बाँस की खोज में इधर-उधर देखने लगा। पर कहीं कुछ दिखाई न दिया।"

"तो इतनी देर में वो पेटी कहाँ-की-कहाँ निकल गई होगी?"

"तब मैं निराश होकर सूर्य भगवान् की तरफ़ देखने लगा। इतने में तो पेटी किनारे आ लगी और मैंने उसे लपककर पकड़ लिया।"

"ओह, तो यों कहो न कि सूर्य भगवान् ने ही इसे मेरे लिए भेजा है। नहीं तो तुम क्या ला सकते थे। लेकिन पेटी में पानी नहीं भर गया था?"

"नहीं, पेटी की दरारों में मोम भरा हुआ था। इससे अन्दर पानी की एक भी बूँद नहीं जा सकी।"

"इसे पेटी में रखकर बहा देनेवाली माता को भी तो आखिर दिल ही होगा न !"

"पेटी के ऊपर कुंकुम के छींटे लगे हुए थे और वह चारों ओर मज़बूत रस्सी से बँधी हुई थी।"

"तो मालूम होता है बड़ी सावधानी से यह सब किया गया था।"

"जैसे ही मैंने पेटी खोली तो देखा कि उसमें एक बालक मीठी नींद में पड़ा था।"

"तो उसमें यही था ?"

"हाँ, यही।"

"बेटा, तेरे इन सुनहले बालों पर मैं कितनी बार वार जाऊँ ?"

"राधा, इससे भी ज्यादा आश्चर्य की बात तो यह है कि इसके शरीर पर जो कवच है वह जन्म से ही इसकी चमड़ी के साथ जुड़ा हुआ मालूम होता है।

"कान इसके कितने सुन्दर हैं। और दोनों कानों में कुंडल किसने पहनाये होंगे ?'-

"ये कुण्डल भी जन्म से ही आये मालूम होते हैं। देख तो कान से ये अलग ही नहीं होते।"

"स्वामी, जन्म से कवच और कुण्डल लेकर पैदा होनेवाले किसी मानव को आपने देखा है ?"

"मानव-सृष्टि में तो यह बात असम्भव है। इसी कारण मुझे तो यह बालक कोई देव-पुत्र मालूम होता है। हम बड़े भाग्यशाली हैं जो यह हमें मिला।"

"बेटा, देवों के भवनों को छोड़कर क्या तू मेरी इस अंधेरी कुटिया में प्रकाश करने को तो नहीं आया है ? हे देवतागण ! आप अपने इस बालक की रक्षा करना।"

"बहन, तो चलो, हम इसका नाम रखें।"

"तो तू ही नाम रख। तू तो इसकी मौसी है न ?"

"बोलो, स्वामी क्या नाम रखें ?"

"जो तुमको अच्छा लगे।"

"मुझे तो इसके ये सोने के कुण्डल अच्छे लगते हैं, इस कारण इसका नाम 'वसुषेण' रखना चाहती हूँ !"

"अच्छा, तो इसका नाम वसुषेण ही रहा।"

"आ, बेटा ! आज तक लोग मुझे केवल राधा ही कहते थे। अब तो वसुषेण की मां कहकर पुकारेंगे। बेटा तूने मुझे मां बना दिया।" राधा की आंखों से आंसू की एक बूंद टपक पड़ी।

यह राधेय ही हमारी कथा का कर्ण है। बड़ा होने पर राधेय ने इन्द्र को अपने कवच और कुंडल दान कर दिये थे, इस कारण वह कर्ण कहलाया। इतिहास इसे कर्ण के नाम से ही पहचानता है।

: २ :

'अंगराज'

"विदुर !" महाराज धृतराष्ट्र बोले।

"जी, महाराज।"

"अब तुम जल्दी करो। मेरे पुत्रों और पाण्डवों ने अपना अभ्यास समाप्त कर लिया है इसलिए उनकी परीक्षा देखने की मेरी बड़ी इच्छा है।"

"लेकिन आप देख कहां सकेंगे ?"

"यह तो ठीक है लेकिन तुम देखोगे, हमारे पितामह देखेंगे, कृपाचार्य देखेंगे, हमारी सारी प्रजा देखेगी, तो यह सब मेरे देखे बराबर ही है। तुम भीष्म पितामह के साथ रहकर इस परीक्षा के लिए जगह वगैरा तैयार कराओ। देखना ज़मीन बिल्कुल सपाट बिना झाड़-झंखार की और देखने वालों को मनोहर लगे, ऐसी होनी चाहिए।" धृतराष्ट्र बोले।

"फिर उस भूमि का खात-मुहूर्त कौन करेंगे ?"

"हमारे पितामह। भीष्म स्वतः हल से उस ज़मीन की सीमा बांधेंगे और उस सीमा में आप रंगभूमि बनायेंगे।"

"ठीक, मैं समझ गया !"

"यह भी ख़याल में रखना कि कुमारों की शस्त्रास्त्र विद्या के प्रदर्शन के लिए काफ़ी ज़मीन खुली और चौड़ी रहे। दर्शकों के लिए भी बड़ा भाग अलग रखना।"

"हाँ, यह मेरे ध्यान में है।"

"नहीं, केवल यही नहीं। दर्शकों में मैं, तुम, भीष्म पितामह, कृपाचार्य आदि सब पुरुष-वर्ग होंगे। स्त्री-वर्ग के लिए अलग मचान बनाना। कुन्ती, गांधारी वगैरा सब स्त्रियाँ भी आयेंगी। इसके अलावा नगर के चारों वर्ण के लोगों के लिए भी अच्छी व्यवस्था करना। भविष्य में जिस प्रजा पर ये बालक राज्य करेंगे उनकी शिक्षा-दीक्षा आदि वह अच्छी तरह आज देख लें, यह मैं चाहता हूँ।"

"अच्छी बात। यह सारी व्यवस्था मैं कर लूंगा।"

"इसके अलावा गाँव के श्रीमन्त लोग अपने-अपने खीमे अलग लगाने की माँग करेंगे सो उनके लिए भी ज़मीन की व्यवस्था पहले से ही कर रखना जिससे बाद में असुविधा न हो।"

"अच्छी बात है।"

"जो मुझे सूझा वह मैंने तुमको बता दिया। बाक़ी तुम अपनी बुद्धि से विचार करके ठीक कर लेना। और कुरुकुल के पुत्रों को शोभा देने योग्य इस उत्सव की व्यवस्था करना"

× × × ×

राजकुमारों की परीक्षा का दिन आया। हस्तिनापुर के पास ही के मैदान में रंगभूमि तैयार की गई। तोरण और पताकाएँ हवा में लहरा रही हैं। अन्दर और बाहर सब तरफ के रास्तों पर पानी का छिड़काव हो रहा है। दर्शकों की रंगभूमि, श्रीमन्तों के ख़ीमे, शिष्टजनों के आसन, स्त्रियों के मंच आदि सब धीरे-धीरे खचाखच भरे जा रहे हैं। और लोग आतुरता से कुमारों की राह देख रहे हैं। भीष्म आगये हैं, कृपाचार्य आगये हैं, धृतराष्ट्र और विदुर भी आगये हैं, कुन्ती और गांधारी

भी और स्त्रियों के साथ अपने-अपने मंच पर आ बैठी हैं। नगर के सब वर्णों के लोग रंग-बिरंगे वस्त्र धारण कर आगये हैं।

इतने में रंगभूमि पर द्रोणाचार्य दिखाई दिये। हवा में लहराती हुई उनकी सफेद डाढ़ी और उतनी ही श्वेत उनकी मूंछें और सिर के बाल, घुटनों तक पहुँचने वाले लम्बे-लम्बे हाथ, धीर और वीर चाल, मज़बूत स्नायु, साथ में उनका पुत्र अश्वत्थामा और उनके पीछे-पीछे उछलते खून वाले युवक कुमार। इन सबको रंगभूमि पर आया देखकर सारा मण्डप तालियों की गड़-गड़ाहट से गूंज उठा। द्रोणाचार्य ने सारी सभा की वन्दना की और बोले:—

"पितामह, महाराज धृतराष्ट्र और दर्शकगण! इतने दिनों में मैंने इन राजकुमारों को जो शिक्षा दी है इसे ये सब आपके सामने बतावेंगे। इन कुमारों के क्षात्र-तेज को ज्यादा-से-ज्यादा चमकाने का मैंने प्रयत्न किया है। आप सब आज मेरे प्रयत्न की परीक्षा करें, यही मेरी प्रार्थना है। मेरा विश्वास है कि मेरे ये शिष्य मुझे यश देंगे।"

इसके बाद कुमार अपनी-अपनी विद्याएँ रंगभूमि पर दिखाने लगे। तलवार और भाले के खेल से लगाकर बड़े-बड़े अस्त्रों के साधने के खेलों तक सब विद्याएँ सभी ने बताईं। युधिष्ठिर, दुर्योधन, भीम, दुःशासन, विकर्ण, सहदेव, सबने क्रम-क्रम से शस्त्रास्त्रों के प्रयोग किये और दर्शकों के मन को हर लिया। इतनी सामान्य परीक्षा हो जाने के बाद भीम और दुर्योधन सामने आये। दोनों जवान थे। दोनों शरीर से मज़बूत थे। दोनों लंगोट कसे हुए थे। दोनों के हाथों पर चमड़े के पट्टे बँधे हुए थे। दोनों के हाथ में एक-एक गदा घूम रही थी। धीरज और चतुराई से दोनों अपने-अपने पैंतरे बदल रहे थे। शेर के समान एक-दूसरे पर वार करने का लाग देखते थे और पर्वत जैसी ढाल पर दोनों एक दूसरे का वार झेल रहे थे। दर्शक थोड़ी देर के लिए स्थिर हो गए। दोनों की तारीफ़ करने लगे। धीरे-धीरे आपस में दल बनने लग गये। इतने में द्रोणाचार्य ने इशारा किया और उनका गदा-युद्ध समाप्त हुआ।

दुर्योधन और भीम के जाने के बाद अर्जुन आया। अर्जुन तो द्रोणाचार्य का सबसे प्रिय शिष्य था। अर्जुन की मेधा, उसकी तीव्र बुद्धि उसकी चालाकी, उसका उद्योग, उसकी निष्ठा इन सबने द्रोणाचार्य को मुग्ध कर लिया था। और द्रोणाचार्य ने अपनी सारी विद्या अर्जुन को सिखाने का पूरा प्रयत्न किया था। कुन्ती का पुत्र अर्जुन जब सामने आया तो ऐसी तालियाँ बजीं कि कुछ पूछो मत। गांधारी कुन्ती से पूछने लगी, धृतराष्ट्र विदुर से पूछने लगे और दर्शक थोड़ी देर के लिए खड़े होकर अर्जुन को देखने लगे।

इतने में द्रोणाचार्य की आज्ञा मिली और अर्जुन ने अपना पराक्रम दिखाना शुरू किया। उसकी विद्या और उसके कौशल का क्या कहना! एक क्षण में अग्न्यस्त्र छोड़कर आग लगा देता है तो दूसरे ही क्षण वरुणास्त्र से उसे बुझा देता है। कभी जरा-सा बन जाता है तो कभी विराट् स्वरूप धारण कर लेता है। कभी पर्वतों को चकनाचूर कर देने वाले बाण छोड़ता तो कभी छोटे-छोटे अंडों और कोमल फलों को बींध डालता। कभी बैल के सींग में बारीक-सा छेद करके उसमें से बाणों को निकालता तो कभी बिजली के समान कड़कड़ाहट करने वाले मेघास्त्र छोड़ता।

दर्शकवर्ग थोड़ी देर के लिए स्तब्ध हो गया, मानो किसी ने चित्र खींच दिया हो। कुन्ती के हृदय में उत्साह समाता न था। भीष्म, कृपाचार्य आदि अर्जुन और द्रोण की तारीफ़ करने लगे। द्रोणाचार्य को ऐसा लग रहा था मानो उनका आचार्यत्व सफल हो गया है। उनके दिल को बड़ी तसल्ली हुई।

अर्जुन ने अपना काम समाप्त किया। चारों भाई अर्जुन के चारों ओर इकट्ठे हो गए। अर्जुन ने जाकर गुरु द्रोणाचार्य को प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। दुर्योधन और उसके भाई एक कोने में खड़े-खड़े यह सब देख रहे थे।

इतने में दरवाजे में एक बड़ा भारी धड़ाका हुआ।

"यह क्या हुआ? यह आवाज़ कैसी?"

सबकी आँखें एक साथ दरवाजे की तरफ़ गई ही थीं कि इतने में एक युवक हाथों में शस्त्रास्त्र लेकर अन्दर आजाता है और रंगभूमि की तरफ़ ललकार कर बोलता है—

"अर्जुन, तूने जो-जो पराक्रम यहाँ बताये हैं वे सब और उनसे ज्यादा मैं करके बताता हूँ। ले तू देख !"

ऐसा कहकर वह युवक तो अपना पराक्रम बताने लगा। उसे देख कर सारी सभा एकदम चकित हो गई। द्रोणाचार्य देखते रह गए, अर्जुन और पाण्डव देखते रहे, दुर्योधन देखता रहा, भीष्म पितामह और कृपाचार्य भी देखते रहे।

अभी दर्शक लोग आश्चर्य-मुक्त हुए ही न थे कि उस युवक ने फिर गर्जना की—

"हे अर्जुन ! तू इन सब कुमारों में श्रेष्ठ गिना जाता है। गुरु द्रोणाचार्य तुझे अपना प्रधान शिष्य मानते हैं। इसलिए मैं तुझे अपने साथ द्वन्द्वयुद्ध के लिए निमंत्रण देता हूँ। इसे स्वीकार कर और मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध कर।"

युवक के गर्जन से दुर्योधन के मन में बड़ा आनन्द हुआ। वह सोचने लगा—"ठीक हुआ। अब जरा अर्जुन का पानी उतरेगा।" भीम और सहदेव उस युवक की ओर कठोर निगाह से देखने लगे। द्रोणाचार्य को यह रंग में भंग होने जैसा लगा। दर्शक लोग भी ऊंचे-नीचे होने लगे और इसका परिणाम क्या होता है यह जानने के लिए उत्सुक होने लगे।

इतने में कृपाचार्य खड़े हुए और बोले—

"हे युवक ! यह अर्जुन महाराज पाण्डु और कुन्ती का पुत्र है। वह वर्ण से क्षत्रिय है और द्रोणाचार्य का शिष्य है। इसलिए उसके साथ द्वन्द्वयुद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले तू अपने कुल और जाति का सबको परिचय दे।"

कृपाचार्य के ये वचन सुनकर वह युवक थोड़ी देर के लिए निस्तेज-सा पड़ गया। लेकिन मध्याह्न के आकाश की ओर देखकर वह तुरन्त ही

सीधा खड़ा होगया और बोला—

"यह रंगभूमि केवल क्षत्रिय के लिए ही नहीं है। यहाँ तो जो पराक्रम करके दिखावेगा वही क्षत्रिय है। अर्जुन अगर सच्चा क्षत्रिय-पुत्र है तो आ जाय मेरे सामने। उसमें क्षत्रिय का खून है, यह कहने से क्या होने वाला है। इस प्रकार खून का अभिमान तो जंगली पशुओं को ही शोभा देता है। मुझे विश्वास है कि अर्जुन ऐसे डरपोक पुरुषों के विचारों का अनुसरण नहीं करेगा। मैं मानता हूँ कि अर्जुन सच्चा मर्द है।"

युवक के ये वचन दुर्योधन के कान में अमृत जैसे लगे। उसने अपने सब आदमियों को लेकर उस युवक को घेर लिया। इतने में भीम ज़ोर से गरज कर उठा—

"ओ मर्द बनने वाले! अपना वर्ण तो पहले बता। अर्जुन राजपुत्र है। राजपुत्र चाहे किसी राहचले आवारे के साथ द्वन्द्वयुद्ध नहीं किया करते। आया है अपना पराक्रम जताने।"

भीम के वचन सुनते ही दुर्योधन छाती तानता हुआ अपने भाइयों के झुण्ड में से बाहर आया और कहने लगा—

"यह युवक राजा नहीं है केवल इसी कारण अर्जुन इससे द्वन्द्वयुद्ध नहीं कर रहा है। यही बात हो तो मैं इसे अंग देश का राजा बनाता हूँ।" यह कहते ही वहीं-का-वहीं दुर्योधन ने कुंकुम का टीका काढ़कर उसे अंगराज के नाम से पुकारा।

सभा में कुहराम मच गया। कोई तो अर्जुन की और कोई उस नये युवक की; कोई दुर्योधन की तो कोई भीम की तारीफ़ करने लगे। स्त्रियों के मंच पर कुन्ती बैठी हुई थी। उसने जब यह दृश्य देखा तो उसकी आंखों के नीचे अँधेरा छा गया और बेहोश होकर वहीं गिर पड़ी।

इसी बीच हाथ में चाबुक लेकर अधिरथ सभा में आया और यह जानकर कि उसका पुत्र वसुषेण अंगदेश का राजा हो गया है, तो वह बड़ा खुश हुआ और उसके पास जाकर उसे छाती से लगा लिया। जब लोगों को यह मालूम हुआ कि यह युवक और कोई नहीं परन्तु अधिरथ

का पुत्र है तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

भीम यह सब देखकर बोला—

"अरे सूतपुत्र ! अपने पिता के हाथ से चाबुक लेकर रथ हाँक भाई, रथ ! ये शस्त्र तुम्हारे हाथ में शोभा नहीं देते। सच्चे क्षत्रिय तेरे साथ युद्ध करने में अपनी हीनता मानते हैं।"

"भीमसेन, अब चुप भी रहो। महापुरुषों और नदियों के मूल को खोजना बड़ा कठिन है। तुम पाण्डव ही किस प्रकार पैदा हुए हो यह किससे छिपा है। इस बात को आगे न बढ़ने में ही कल्याण है।" दुर्योधन ने जवाब दिया।

इसी बीच भीष्म, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र आदि खड़े हुए और सभा बिखरने लगी। गांधारी को लेकर कुन्ती घर गई। पाण्डवों को लेकर द्रोण घर गये। दर्शक-वर्ग धीरे-धीरे खिसकने लगा। केवल कर्ण और कौरव ही वहाँ रह गए।

"कुमार दुर्योधन, मैं आपका बड़ा आभारी हूँ। मैं सूतपुत्र हूँ, इसका विचार न करके मुझे अंगदेश का राजा बना दिया और मेरी प्रतिष्ठा क़ायम रखी इसके लिए मैं आपका आजन्म ऋणी हो गया हूँ।"

कर्ण से आलिङ्गन करता हुआ दुर्योधन बोला—

"मैंने कुछ नहीं किया भाई ! क्षत्राणी के पेट से जन्म लिया इसीलिए कोई तो बड़ा और किसी दूसरी माँ के पेट से जन्म लिया, इसलिए कोई छोटा, यह बात ही मैं सहन नहीं कर सकता। जो ऊंचा काम करेगा वह ऊंचा और जो नीचा काम करेगा वह नीचा। मैं तो यह मानता हूँ।"

"फिर भी आपने मेरा पक्ष लिया इसलिए मैं तो आपका आभारी ही हूँ और आप जो कहो, वह करने को तैयार हूँ।"

'मैं किसी चीज़ का भूखा नहीं हूँ मुझे तो सिर्फ तुम्हारी मित्रता चाहिए।'

"यह आप क्या कहते हैं ? मित्रता तो है ही। कहाँ मैं राधा का पुत्र और कहाँ आप महाराज धृतराष्ट्र के कुंवर ! कहां तो यह सभामंडप और परीक्षा का समय और कहां एकाएक मेरा यहां आजाना; और फिर

कहां मैं और कहां अंगदेश का राज्य ! कहीं हमारे इस प्रकार इकट्ठा होने में ईश्वर का कोई संकेत तो नहीं है ? मुझे आपकी मैत्री का शुभ अवसर मिले इसीलिए शायद ईश्वर ने मुझे यहां भेजा हो ? मैं आपको यह वचन देता हूँ कि यह कर्ण आज से दुर्योधन का मित्र है। भगवान् सूर्य को साक्षी रखकर की गई यह मित्रता अखण्ड रहे।"

इतना कहकर कर्ण ने अपना हाथ दुर्योधन के हाथ पर रखा। सब कौरव अपने इस नवीन साथी को हर्ष से बधाई देते हुए और अपने-अपने मन में अनेक मनसूबे बांधते हुए घर आगये।

: ३ :

'मैं सूत-पुत्र को नहीं वरूंगी'

द्रौपदी का स्वयंवर था। द्रौपदी राजा द्रुपद के यज्ञ में से उत्पन्न हुई थी। उसका भाई भी उसी यज्ञ की अग्नि में से खड्ग, कवच और धनुष बाण लेकर ही उत्पन्न हुआ था। इस स्वयंवर में देश विदेश के राजा आये थे। दुनिया के मशहूर नट, वैतालिक, पौराणिक, मल्ल और ब्राह्मण भी आये थे।

शहर के बाहर के विशाल मैदान में स्वयंवर के लिए एक सुन्दर मण्डप बनाया गया था। मण्डप के द्वार तोरण और पताकाओं से सुशोभित थे। धूप और अगरु की सुगन्ध से सारी दिशाएँ सुवासित हो रही थीं। राजा-महाराजाओं के बैठने के लिए सिंहासन थे। पुरवासियों के लिए अलग मंच बनाया गया था। दूर के एक कोने में दक्षिणा की लालसा से आये हुए कुछ ग़रीब और दुबले-पतले ब्राह्मण भी जैसे-तैसे ठूंस-ठांस कर बैठे थे।

स्वयंवर का समय हुआ। कुमार धृष्टद्युम्न मण्डप में आये और मेघ-गर्जन के समान गम्भीर स्वर में बोले—"स्वयंवर में आये हुए राजा-महाराजा गण, सुनिये यह जो धनुष रखा हुआ है इसे आप देख रहे हैं। इससे इस यंत्र के छेद में पांच बाण मारकर जो ऊपर का वह निशान

बींधेगा उसे मेरी बहन इस स्वयंवर में वरण करेगी।''

सारे राजा द्रौपदी को प्राप्त करने के लिए लालायित हो रहे थे। दुर्योधन अपने भाइयों और कर्ण के साथ वहां उपस्थित था। गंधार से शकुनि आया था। अश्वत्थामा और विराट भी उपस्थित थे। चेकितान और भगदत्त को भी कम आशा नहीं थी। कंक और शंक भी आये थे। शिशुपाल और जरासंध को भी उनका गर्व वहां खींच लाया था।

धृष्टद्युम्न के वचन सुनकर राजा लोग एक-के-बाद एक करके अपना पराक्रम बताने लगे। पर किसमें इतनी ताक़त थी जो धनुष चढ़ाता। राजा लोग धनुष को झुकाकर उस पर डोरी चढ़ाने जाते थे कि धनुष की नोक इतने ज़ोर से छाती में लगती कि वे बेहोश-से होकर ज़मीन पर गिर पड़ते थे। उनका मुकुट एक ओर गिरता था तो उनके आभूषण दूसरी ओर जा गिरते थे। सुध आने पर वे अपना-सा मुंह लेकर अपनी जगह पर चले जाते थे। शिशुपाल जैसा राजा भी धनुष चढ़ाते-चढ़ाते घुटनों के बल गिर पड़ा और अपनी जगह पर भाग आया। महाराजा शल्य आये और उनकी भी यही दशा हुई। महावीर जरासंध भी गिर पड़ा और उसके घुटने छिल गए।

ऐसी परिस्थिति में राधा-पुत्र कर्ण खड़ा हुआ और धनुष के पास गया। उसकी कान्ति मनोहर थी। उसकी चाल में गौरव था। उसके मुख पर पूरा आत्म-विश्वास था। ज्योंही कर्ण ने धनुप को हाथ लगाया कि सबको ऐसा लगा मानो निशाना बिंध गया हो।

लेकिन कर्ण के भाग्य में द्रौपदी न थी।

द्रौपदी द्रुपद की पुत्री थी, द्रौपदी महा-समर्थ धृष्टद्युम्न की बहन थी; द्रौपदी यज्ञ में से उत्पन्न हुई थी; द्रौपदी वीर क्षत्राणी थी।

कर्ण को धनुष चढ़ाते देखकर वह तुरन्त ही बोल उठी—"मैं सूत-पुत्र को नहीं वरूंगी।''

ये शब्द कान में पड़ते ही कर्ण का सारा शरीर कांप उठा। तेजस्वी कर्ण, अंगदेश का राजा कर्ण, शस्त्रास्त्र में श्रेष्ठ कर्ण, कवच-कुण्डल

धारण करने वाला कर्ण, एकाएक निस्तेज हो गया। उसका पराक्रम न जाने आज कहां चला गया। उसका शरीर शिथिल हो गया। ऐसा मालूम होने लगा मानो उसकी सारी इन्द्रियां सो गई हों। "सूतपुत्र"—"सूतपुत्र" ये शब्द बार-बार उसके कानों में गूंजने लगे। ब्राह्मण और क्षत्रियकुल के इस खून के अभिमान रूपी किले को धराशायी कर डालने का विचार एक क्षण के लिए उसके मन में गुजर गया।

पर इतने में तो उसका शरीर चुपचाप अपने स्थान पर आकर बैठ गया था।

: ४ :

परशुराम का शाप

"बेटा, तू वहां क्या कर रहा है ? मेरे पास आकर बैठ !" आश्रम के चबूतरे पर बैठते हुए गुरु परशुराम ने पूछा।

'महाराज, थोड़ी-सी आग बाकी रह गई थी सो बुझाकर यह आया' कह कर कर्ण परशुराम के पास आकर बैठ गया।

"देख बेटा, कल तू यहां से चला जायगा। यह सोचकर मेरे मन में न जाने क्या होने लगता है। क्या मेरे मन की हालत तू समझ सकता है?"

"क्यों नहीं समझ सकता ? आपने मुझ पर असाधारण कृपा करके मुझे जो विद्या सिखायी है उसका बदला मैं कब दे सकूंगा, यही मैं सोचता हूँ ?"

"ऐसा मत कहो। मैं ब्राह्मण हूँ। विद्यादान का बदला लेने का विचार तक मेरे मन में नहीं है। तू ब्राह्मण-पुत्र मेरे पास रहकर इतना सीखा, यही मेरा बदला है। परन्तु नहीं—नहीं।"

कर्ण परशुराम के सामने देखकर बोला—"महाराज कहिए न, रुक क्यों गये ?"

"नहीं......कुछ नहीं......।"

"कहिए न, आपको जो कहना हो अवश्य कहिए।"

"सुनेगा? बात तो एक ही कहनी है। तू कांप क्यों रहा है? तेरी आंखों में यह विह्वलता क्यों है? तेरा मुंह पीला क्यों पड़ रहा है?"

"आपको ऐसा ही लग रहा है। मुझे कुछ नहीं हुआ है। आप शान्तिपूर्वक कहिये।"

"यही कहना है कि अगर तू मेरा सच्चा शिष्य है तो पृथ्वी पर से क्षत्रियों का नामोंनिशान मिटा देना।"

"महाराज!"

"मैं महाराज नहीं; मैं क्षत्रियों का काल हूँ। मेरा यह फरसा देख। इस फरसे से मैंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर डाला। मेरा नाम सुनते ही क्षत्राणियों का गर्भपात हो जाता था। ऐसा मेरा आतंक था।"

"महाराज फिर भी क्षत्रिय तो बच ही गए।"

"हां, रह गये इसीका तो मुझे अफ़सोस है। इक्कीस बार क्षत्रियों के कुल का उच्छेद कर डाला और जिस प्रकार दावानल जंगलों को जला कर ख़ाक कर देता है उसी प्रकार उनको मिट्टी में मिला दिया, फिर भी उनका बीज तो रही गया।"

"महाराज!"

"सुन, इक्कीस बार मैंने दुधमुँहे क्षत्रिय बालकों के सिर उड़ा दिये, इक्कीस बार युवती क्षत्राणियों को विधवा बना दिया; इक्कीस बार खून के बड़े-बड़े कुण्ड भर डाले और फिर भी जब क्षत्रियों का बीज नष्ट नहीं हुआ तब मैं हारा। मुझे लगा कि शायद क्षत्रियत्व नष्ट करने में, मैं जगत के ईश्वरीय संकेत के विरुद्ध चल रहा हूँ। इसलिए अपना फरसा लाकर मैंने इस कुटी में टांग दिया और अपना मन तपश्चर्या में लगाया।"

"फिर मुझे क्षत्रियों का बीज नष्ट करने की आज्ञा क्यों?"

"बेटा, तू मानव-हृदय को नहीं पहचानता। तभी ऐसी बात पूछता है। फरसा यहाँ लाकर टाँग देने से तू यह समझता है कि मेरा दिल

शान्त हो गया ? नहीं, बिलकुल नहीं। अगर ऐसा होता तो मैं अपनी यह रहस्य-विद्या तुझे नहीं सिखाता। अगर शान्त होता तो इस विद्या को, किसी के भी हाथ न लगे ऐसी जगह कभी का गाड़ दिया होता।"

"अगर मैं क्षत्रिय होता तो आप मुझे यह विद्या सिखाते या नहीं ?"

"इसका उत्तर तो तुम स्वयं ही हो। शुद्ध ब्राह्मण-पुत्र के सिवा मैं और किसी को अपनी विद्या नहीं सिखाता। दूसरा कोई सीखने आवे तो उसे जलाकर भस्म कर डालता। पर तू तो ब्राह्मण है। नीची निगाह क्यों करता है ? ब्राह्मण-जन्म तो इस जगत में सर्वश्रेष्ठ है। तुझे देखते ही मुझे ऐसा मालूम होने लगता है मानो मेरा अधूरा कार्य तू पूर्ण करेगा। और इसी हेतु मैंने अपनी सारी विद्या तुझे दे दी है।"

"महाराज, आप बहुत उत्तेजित हो गये हैं ज़रा शान्त होइए। फिर आप जो कहेंगे वह सब मैं करने को तैयार हूँ।"

"बेटा, जब तू यहाँ आया ही नहीं था तब तो मैं शान्त था। उस मंगलप्रभात में जब तू आगया, उसी समय अगर तूने यह बताया होता कि तू क्षत्रिय-पुत्र है तो मैं शान्त रहता; उसी दिन अगर तूने कह दिया होता कि तू वैश्य-पुत्र है तो मैं शान्त रहता; उसी दिन तूने अपने को शूद्र-पुत्र बताया होता तो मैं शान्त रह जाता। लेकिन तूने तो अपने को ब्राह्मण-पुत्र बताया और मेरे हृदय की पुरानी आग फिर प्रज्वलित हो गई। उस पर जो राख पड़ी हुई थी वह अपने आप उड़ गई और मैं भभक उठा। उसी भभक में मैंने तुझे विद्या सिखाई। तू मेरे जैसा कट्टर ब्राह्मण बने इस आशा से मैंने अपना हृदय निचोड़कर तुझे दे दिया और मेरी विद्या का तू बराबर उपयोग करेगा इसी श्रद्धा से तो कल तुझे यहाँ से विदा करके मैं निश्चिंतता से सोऊँगा।"

"महाराज, आप अस्वस्थ मालूम होते हैं, कुछ आराम कर लें। फिर मुझे आप जो कहना चाहें, कहियेगा।"

"आराम तो कल लेना ही है। पर मुझे, जिसके हाथ खून से इस प्रकार सने हुए हों, इस जन्म में आराम कहाँ ? आराम है मेरे हाथ को,

आराम है मेरे पैर को; आराम है मेरे फरसे को; लेकिन मेरी आत्मा को आराम नहीं है। उसे तो तभी आराम मिलेगा जब तू उसे आराम देगा।"

"महाराज आप थोड़ी-सी देर लेट लें। नहीं तो, फिर मैं यहाँ से नहीं जाऊंगा। आपकी अस्वस्थता मुझसे नहीं देखी जाती।"

"ठीक है, तेरी इच्छा है तो यही सही।"

"आप मेरी जाँघ पर सिर रखकर ही सो जाइए।"

× × × ×

"बेटा, मुझे फुसलाता है। नहीं, तू ब्राह्मण ही है। तेरी देह पर गायत्री का तेज है। मुझे एक बार कह दे कि मैं ब्राह्मण हूँ तो बस, फिर मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

'तेरा हाथ बहुत खुला रहता है यह मुझे ठीक नहीं लगता। तेरी उदारता देखकर मुझे आश्चर्य होता है। फिर यह भी मन में होता है कि ब्राह्मणों ने सारी पृथ्वी क्षत्रियों को दे दी है, यह भी कम उदारता थी?

'तेरा मुंह ब्राह्मण जैसा है। तेरी कान्ति भी उतनी ही मोहक है। तेरे ये कवच-कुण्डल किसी ब्राह्मण-दम्पति के व्रत-उपवास के फल हैं। तू ब्राह्मण ही है। परशुराम की विद्या को ब्राह्मण के सिवा और कोई पचा नहीं सकता।"

कर्ण की गोदी में परशुराम का सिर था। और अर्ध-निद्रा और अर्ध-जागृत अवस्था में अपने दिल की बातें परशुराम के मुंह से निकल रही थीं। कर्ण काँपते हुए हाथों से परशुराम का शरीर सहलाता जाता था।

इतने में परशुराम एकाएक उठे और अपनी पीठ के नीचे देखा तो खून की धारा बह रही है।

'बेटा, यह क्या? यह खून कहाँ से आया? तेरे पैर में यह क्या हुआ?'

कर्ण खड़ा हो गया। उसका शरीर कांप रहा था। उसकी आँखें विह्वल थीं। उसकी वाणी भयभीत थी।

"महाराज..............."

"यह खून कैसे आया?"

"महाराज,आपके सो जानेके बाद एक भौंरा उड़ता-उड़ता इधर आया।"

"फिर ?"

"उस भौंरे ने मेरी जांघ में काट खाया।"

"तो तूने उसे उड़ा क्यों नहीं दिया ?"

"मैंने उसे उड़ाने की बहुत कोशिश की परन्तु वह तो मेरी जाँघ को कुतर-कुतरकर अंदर हीअंदर घुसता जाता था। उसने गहरा छेद कर डाला।"

"इतना गहरा छेद कर दिया और तू कुछ भी न बोला ? हिला-डुला भी नहीं ?"

"आपके आराम में विघ्न न पड़े इसलिए मैं ऐसा ही बैठा रहा।"

परशुराम यह सुनकर चुप हो गये। उनका मन अन्दर गहरे उतरकर कुछ सोचने लगा। क्षणभर के लिए उनकी आंखें मुँद गईं। फिर उन्होंने आंखें खोलीं और उन आंखों में से आग की चिन्गारियां बरसने लगीं।

"सच सच बता तू कौन है ?"

"महाराज, यह आप क्यों पूछ रहे हैं ? मैं आपका शिष्य।"

"पर तेरा वर्ण क्या है ?"

"ब्रा······ह्म······ण।"

"सच बता। तू ब्राह्मण नहीं है। जल्दी बता, नहीं तो तुझे भस्म कर दूंगा।"

कर्ण सहम गया। उसके सारे शरीर में पसीना आगया। उसकी आंखों के नीचे अंधेरा छागया। उसके अङ्ग शिथिल होगये। उसका गला रुंधने लगा। उसकी जीभ मानो भाषा भूल गई हो।

"जल्दी उत्तर दे नहीं तो·········"

"महाराज, मैं सारथि-पुत्र कर्ण हूँ।"

"ऐ······! सारथि-पुत्र ? धिक्कार है तुझे ! तूने मेरी विद्या को भ्रष्ट कर दिया। तूने मुझे धोखा दिया। अपने को ब्राह्मण-पुत्र बताते हुए तेरी जीभ गलकर गिर क्यों न गई।"

"महाराज, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। अर्जुन के प्रति वैर-बुद्धि से प्रेरित होकर मैं आपके पास आया था। आपकी इस कृपा को मैं कभी भी नहीं भूलूँगा।"

"और मैं भी तो इतना मूर्ख था न कि तुझे अन्त तक ब्राह्मण-पुत्र मानता ही रहा। आज मुझे पता चला कि तू ब्राह्मण-पुत्र नहीं है।"

"महाराज, मुझे मेरी भूल के लिए क्षमा कीजिए।"

"कर्ण, तेरा कहना ठीक है। क्षमा करना ब्राह्मण का धर्म है। यह मैं समझता भी हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि आदमी जब वैर-बुद्धि से प्रेरित होता है तब क्या-क्या नहीं कर डालता। लेकिन इतने वर्षों के बाद मुझे एक ब्राह्मण-शिष्य मिला और उसके ऊपर मैंने आशा का जो महल खड़ा कर लिया था वह आज ढह पड़ा, इसीका मुझे बड़ा आघात लगा है। इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय रहित करके जब यहाँ आया था तो जीवन वीरान-सा लगता था। पर तेरे आने से वह फिर हरा-भरा होगया। पर जगत् के ईश्वरीय संकेत के विरुद्ध आशा रखनेवालों की आशाएँ इसी प्रकार नष्ट होजाती हैं, यही इस पर से मेरी समझ में आता है।"

"महाराज, मुझे क्षमा कीजिए। कल के बजाय मैं आज ही यहाँ से विदा हो जाता हूँ।"

"कर्ण, क्षमा करने की इच्छा तो बहुत होती है लेकिन कर नहीं सकता। मैंने तुझे अपने प्रिय पुत्र के समान रखा। रात में जब तू सोया रहता था तो तेरे कानों में मैं अपनी विद्या के रहस्य भरता रहता था! यह सब मैंने अपनी वैराग्नि को तृप्त करने के लिए ही तो किया। अगर तू न आया होता तो तपश्चर्या में मैं न जाने कितना आगे बढ़ गया होता!"

"महाराज, मुझे किसी प्रकार क्षमा करें।"

"क्षमा तो तुझे उसी दिन से कर दिया जब से पुत्र समझा।"

"तो महाराज! आशीर्वाद दीजिए ताकि यहाँ से मैं विदा लूं।"

"शाप समझ या आशीर्वाद समझ; इस समय तो मेरे दिल से एक ही आवाज़ निकलती है कि मेरी दी हुई विद्या अपने अंत समयमें तू भूल जायगा।"

"महाराज, क्षमा कीजिये। आपके लिए यह उचित नहीं है।"

"कर्ण, सुन। जब तेरा अन्त समय आयगा तो रणभूमि में तेरे रथ का पहिया पृथ्वी में धंसने लगेगा। और उसी समय तू अपनी विद्या भी भूल जायगा।"

"भगवन् बस कीजिए! मेरे अपराध को क्षमा कीजिए।"

"जा,अब तू सुख से घर जा। मेरा दिल आज हलका होगया। जिस वैर को मैंने आज तक अपने पुत्र के समान पाल रखा था उसी वैर ने मेरे सारे जीवन को खट्टा बना दिया। मैंने सोचा था कि विरासत में यह वैर मैं तुझे दे जाऊँगा और फिर शांति से रहूंगा। लेकिन ऐसी शांति प्रभु किसे देते हैं? आज जिस प्रकार तुझे यहाँ से विदा दे रहा हूँ उसी प्रकार इस वैर को भी छुट्टी देरहा हूं। कर्ण, मार-काट और खून-खच्चर से हृदय की और विश्व की शांति खोजनेवाले सब लोगों को बताना कि परशुराम ने इसी तरह की शांति प्राप्त करने के लिए क्या-क्या नहीं किया लेकिन परिणाम में तो उसे अशांति ही मिली। पर तुझे भी तो अर्जुन को मारना है। इसलिए अभी यह बात तेरी समझ में नहीं आयगी। लेकिन याद रखना कि तेरे दुर्योधन, दुःशासन, अर्जुन, भीम और खुद युधिष्ठिर को भी यह बात समझनी पड़ेगी। इसके बिना कोई चारा नहीं है। फिर भले आज समझो या खून में हाथ रंग लेने के बाद, मेरे समान, अन्त समय में समझोगे।"

"महाराज, अब विदा लेता हूँ। मुझपर कृपा-दृष्टि बनाये रखिएगा।"

"कृपा-दृष्टि तो तुझपर और मुझपर उस ईश्वर की ही चाहिए। तुझे यहां लाकर मेरे हृदय का अन्धकार दूर करने का ही शायद उसका आशय रहा हो। जाओ बेटा, भगवान् तुम्हारी रक्षा करें।"

: ५ :

जननी के सामने

महल के पास के एक लता-मण्डप में कर्ण खड़ा खड़ा इष्ट-मंत्र का जप कर रहा था। प्रतिदिन मध्याह्न तक इस प्रकार जप करने का उसका नियम था। वह आंखें मूंदकर माला फेर रहा था। उसी समय एक स्त्री आयी और उसके पीछे एक ओर खड़ी हो गई। उम्र से स्त्री वृद्धा-सी जान पड़ती थी। उसके सिर के बाल सफेद होगये थे। शरीर पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं फिर भी उसकी आँखों का तेज किसी वीरांगना को भी लजाने वाला था।

मध्याह्न ढला, कर्ण का जप-यज्ञ पूरा हुआ और पीछे फिर कर देखता है कि एक स्त्री खड़ी है।

"तुम कौन हो?" और उसकी ओर ध्यान से देखकर बोला—"ओहो, आप तो कुन्ती! आप यहां कैसे?"

"बेटा, एक चीज माँगने आयी हूँ।"

"श्रीकृष्ण की बुआ और वीर अर्जुन की माता मुझ सूतपुत्र से किस चीज़ की आशा रखती हैं?"

"बेटा, जैसे मैं वीर अर्जुन की मां हूँ वैसे ही सूतपुत्र कहे जाने वाले कर्ण को भी मां हूं। तू राधा का पुत्र नहीं मेरा पुत्र है।" कुन्ती ने कहा।

"नहीं, नहीं, मेरा मल-मूत्र उठाने वाली और मुझ अकेले पर ही अपने जीवन का आधार रखने वाली राधा मेरी मां नहीं है, जिस दिन मैं यह मानूँगा उस दिन आकाश टूट पड़ेगा।" कर्ण ने कहा।

"बेटा, मेरी बात भी तो जरा सुन। मैं राजा कुंतिभोज की पुत्री हूँ। मेरे पिता के यहाँ बहुत से महापुरुष अतिथि आया करते थे। उनकी सेवा करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था।"

"कुन्ती, ये सारी बातें मैं जान चुका हूँ। अभी कल ही श्रीकृष्ण मुझे रथ में बिठा कर लेगये थे और उन्होंने सारी बातें विस्तार से बताई थीं।

यह बात जब मैं सुनता हूँ तो मेरे रोएँ खड़े हो जाते हैं।" कर्ण की आवाज़ बदलने लगी।

"कर्ण, ज़रा शांत हो। तुझे अगर क्रोध आवे तो मुझे जितना कहना हो कहना। मैं सब चुपचाप सह लूँगी। परन्तु मेरी बात तो पहले सुन ले। मेरे कोई लड़की तो है नहीं जो उसके सामने अपना दिल खोल कर रख सकूँ। इतने वर्षों के बाद जब तुझसे मिलती हूँ तो मेरे इन सूखे हुए स्तनों में भी दूध की धार उतर आती है। मुझे अपनी बात कह तो लेने दे जिससे मेरे दिल का भार हलका हो।"

"अच्छा, कहो।"

"कुन्तिभोज के यहाँ एक दिन दुर्वासा ऋषि पधारे। मेरी सेवा-चाकरी से वह प्रसन्न हुए और मुझे पाँच मंत्र दिये और कहा कि इन मंत्रों से तू जिस किसी देवता का आह्वान करेगी वह आकर उपस्थित होगा। प्रत्येक स्त्री का हृदय जिस एक वस्तु के लिए तरसता रहता है वही वस्तु तुझे इन मन्त्रों से प्राप्त होगी।"

"फिर ?"

"मैं तो कुंआरी थी। स्त्री का हृदय किस एक वस्तु की लालसा करता है यह तो मुझे मालूम नहीं था। इस कारण मेरा कुतूहल बढ़ा। एक मंत्र का प्रयोग करके मैंने सूर्यनारायण का आह्वान किया।"

"फिर ?"

"तेजस्वी सूर्यनारायण प्रकट हुए। पर मैं तो कुछ भी नहीं समझी। लेकिन मेरे हृदय में एक बड़ा भारी तूफान चलने लगा था। सूर्यनारायण ने पूछा—'मुझे क्यों बुलाया है ?' मैंने कहा—'आप वापस जाइए।' मैं कन्या थी। मेरे शरीर में खून उछल रहा था। मेरे अंग-प्रत्यंग फटे-से पड़ते थे। मैंने सूर्य के सामने आड़े हाथ कर लिये। मैंने कहा—'मैं कुंआरी हूँ। समाज मुझे क्या कहेगा !" लेकिन सब व्यर्थ। मेरी आत्मा परवश थी। मना करते-करते भी मैं सूर्य की तरफ खिंची ही जाती थी।"

"फिर ?"

"फिर तो नौ महीने नौ युग के समान लंबे हो गये। न कहीं बाहर निकल सकती थी न किसी को मुह दिखा सकती थी। लाज का ठिकाना नहीं। इस प्रकार दिन बीते और एक दिन बेटा तू आया। तेरे ये कवच और कुण्डल उस समय कैसे शोभा देते थे। मैं तो उन्हें देखकर अघाती न थी।"

"फिर ?"

"फिर ? फिर...तुझे छोड़ा। रेशमी कपड़े में लपेट कर तुझे पेटी में रखा और अपने हाथों से अपनी आँखें मूंद लीं। दासी ने पेटी बंद करदी।"

"फिर ?"

"फिर मेरा तुझपर से अधिकार उठ गया और तेरी राधा का अधिकार शुरू हो गया।"

"फिर ?"

"बेटा, अब भी फिर-फिर कहकर मुझे चिढ़ाता क्यों है ?"

"तो अब आज क्या माँगने आयी हो ?"

"मैं एक ही चीज़ माँगने आयी हूं कि तू मेरी छाती में वापस आजा और मुझे मां कहकर पुकार।"

"कुन्ती, कुन्ती, आपको यह कहते लाज नहीं आती ? जो स्त्री अपने पेट के बालक को नदी में बहाते हुए नहीं झिझकी वह आज मां होना चाहती है; क्या यह उचित है ?"

'बेटा कर्ण, ऐसा मत कह। तुझे अभी स्त्री-जीवन का अनुभव नहीं है।'

"तुमको किसने कहा था कि इस रास्ते जाओ।"

"तूने कुँआरी अवस्था नहीं बितायी है। इस अवस्था में होनेवाली दिल की उथल-पुथल को तूने अनुभव नहीं किया है। यह अवस्था ही मनुष्य को कितना विह्वल कर डालती है इसका तुझे अनुभव नहीं है।"

"यह ठीक है। समझ लो कि जो हुआ ठीक हुआ। परन्तु तुम्हें मेरा त्याग करने का क्या अधिकार था ? जो माता अपने बालक का सर्वाङ्ग सुन्दर विकास न करे, उसको माता होने को क्या अधिकार है ?" कर्ण गरम हुआ।

"बेटा, तेरी बात बिलकुल सच है। लेकिन बेटा स्त्री माता होती है तो अपनी बुद्धि से गणित की गिनती करके होती है क्या ? इसमें तो प्राणि-मात्र अन्तर की एक धड़कन के वश होकर बरतते हैं और माता-पिता धर्म, अधिकार, विकास वग़ैरा तो सब बाद में पैदा होते हैं।"

"परन्तु तुमने मेरा त्याग किया यह बात नहीं भूल सकता।"

"बेटा, यह बात तो भूलने जैसे है भी नहीं। लेकिन इसका दोष तुझे समाज को देना चाहिए। हमारा समाज ऐसी भूलों को क्षमा नहीं करता, उल्टे घाव पर नमक छिड़कता है। इसीसे मेरे जैसी माताओं को ग़लत रास्ता लेना पड़ता है। ऐसी भूलें न होने पावें इसके लिए समाज उचित उपाय करे, यह ज़रूरी है। लेकिन भूलें हो जाने पर उदार दृष्टि से उसपर विचार करे और उसका हल निकाले। मेरे विचार से समाज के कितने ही गुप्त पाप अपने-आप कम हो जायंगे।"

"परन्तु कुन्ती, तुमने मेरा तो बुरा ही किया न ? जन्म से क्षत्रिय होते हुए भी मैं सूतपुत्र कहाया। और वह भी तुम्हारे पाप के कारण।"

"ज़रूर ! यही बात तो मुझे आज तक जला रही है। पांडव और कौरवों की परीक्षा के समय तूने अर्जुन को द्वन्द्वयुद्ध में ललकारा और जब कृपाचार्य और भीम ने तेरा 'कुल और गोत्र' पूछा और तुझे हीन बताया, उस समय मैं बेहोश होगयी थी, यह तुझे मालूम थोड़े ही है ! द्रौपदी के स्वयंवर में जब धनुष चढ़ाने को तू खड़ा हुआ तब द्रौपदी ने कहा, 'मैं सूतपुत्र को नहीं वरूंगी' यह समाचार सहदेव ने जब मुझे सुनाया तो मेरे हृदय में कैसा मन्थन होने लगा था, उसका तुझे ख़याल ही कहाँ से हो सकता है ! बेटा, तुझे मेरे कर्मों के कारण सूतपुत्र होना पड़ा इसमें ज़रा भी शङ्का नहीं है। लेकिन आज तो बेटा सब भूल जा और मेरी गोदी में वापस आ जा।"

"कुन्ती, तुम्हारी बात मेरी समझ में थोड़ी-थोड़ी आती है। आज न जाने क्यों मेरे जीवन का रोष उतरा जाता है। लेकिन मैं फिर से तुम्हारा हो जाऊं.यह संभव नहीं मालूम होता। राधा ने सगी माँ के प्रेम से मेरा

पालन-पोषण किया है। सूत जाति में मैंने शादी की है और मुझे लड़के-बच्चे हुए हैं। उस सारे स्नेह सम्बन्ध को छोड़कर कुन्ती-पुत्र होना मेरे लिए असम्भव है।"

"बेटा, इस तरह मत बोल। मैं तेरी राधा के पैरों पड़ूंगी। जैसे द्रौपदी मेरी बहू वैसे ही तेरी स्त्रियां भी मेरी बहू। तू युधिष्ठिर का बड़ा भाई है। पाँचों पाण्डव तेरी सेवा करेंगे। और युद्ध के अन्त में जब तू इस भारतवर्ष का राजा होगा तभी मुझे सन्तोष होगा। तू तो राजा होने के लिए ही पैदा हुआ।"

"कुन्ती, तुम जो कुछ कहती हो वह चाहे जितना अच्छा दिखाई दे फिर भी मेरे लिए तो वह असम्भव है। भारतवर्ष के राजा या तो युधिष्ठिर होंगे या दुर्योधन होगा।"

"नहीं, नहीं। मैं तो चाहती हूँ कि युधिष्ठिर तेरे पास खड़ा रहकर तेरी सेवा करे। और जहां तुम जैसे और अर्जुन जैसे वीर मेरे पुत्र हों वहां दुर्योधन के लिए राज्य की आशा ही कहां है?"

"कुन्ती, मुझे क्षमा करो। स्वार्थ के वश होकर तुम मुझे अधर्म की तरफ ले जा रही हो। जिस समय सारे हस्तिनापुर में सब लोग मुझे 'सूत-पुत्र' 'सूतपुत्र' कहकर दुत्कारते थे तब दुर्योधन ने मुझे अंगदेश का राजा बनाया। जब भीष्म, द्रोण और विदुर जैसे महात्मा भी कौआ कहकर मेरा तेजोवध कर रहे थे उस समय दुर्योधन ने मुझे अपने पास रखकर मित्रता को कायम रक्खा। जब युद्ध करना या न करना इसपर चर्चा और निर्णय हो रहा था तब मेरी मित्रता के आधार पर ही दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को वापस लौटा दिया और युद्ध स्वीकार किया। आज उस दुर्योधन की मित्रता के पाये को तोड़कर मैं फिर तुम्हारा हो जाऊं, इसमें तुम्हारी क्या शोभा है? तुम स्वार्थ से अन्धी हो गई हो इसलिए यह चाहती हो। तुमको यह पता नहीं कि अभी भी अर्जुन श्रीकृष्ण की मित्रता को छोड़ सकता है लेकिन कर्ण दुर्योधन की मित्रता नहीं छोड़ सकता।"

"तो मुझे इस प्रकार एकाएक निराश करेगा?"

"कुन्ती, दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है।"

"रास्ते अगर निकालने ही हों तो बहुत हैं। लेकिन तुझे निकालना जो नहीं है। लड़ाई में तू अपने हाथों अपने ही सगे भाइयों को मारेगा, तब तेरा हृदय फटेगा नहीं ? युधिष्ठिर को मारते हुए तेरा हाथ उठेगा ? नकुल और सहदेव जैसे मेरे कोमल कुमारों को तू मारेगा ? कर्ण, ज़रा विचार तो कर। तू तो सब यह कर सकेगा। लेकिन तुम सबको एक ही पेट से जन्म देनेवाली इस कुन्ती का उस दिन क्या होगा, इसका भी कुछ विचार किया है ?"

'कुन्ती,यह तो लड़ाई का मामला है। क्षत्रिय ऐसी बातोंसे डरते नहीं हैं।'

कुन्ती आगे आयी और घुटनों के बल पड़ गई। उसने कर्ण के घुटनों को पकड़ लिया।

'बेटा, मेरी तरफ देख तो। तेरे पास कौन आया है यह तेरे ध्यान में है ?'

"हां, तुम कुन्ती।"

"अब भी इस प्रकार से इस तटस्थ नाम का तू उपयोग कर रहा है ? मैं कुन्ती तेरी माँ हूं। युद्ध में तुझे अपने ही भाइयों को मारना हो तो उसके पहिले तू यहीं मुझे मार डाल कि जिससे यह देखने का मौका ही मुझे न मिले। मेरा धर्म-अधर्म, तेरी मैत्री, तेरा क्षत्रियत्व ये सब तेरी इस मां के सामने टिक रहे हैं इसी का मुझे आश्चर्य होता है। नहीं तो माता की आंख का एक आंसू इन सबको मिटा डालने को समर्थ है। कर्ण मेरी तरफ़ देख। ऊपर तेरे पिता बैठे हैं। उस पिता की साक्षी में मैं तुझसे मांगती हूँ कि युद्ध में पाण्डवों को न मारने का वचन मुझे दे।" कुन्ती की आंखों में आंसू आ गये।

कर्ण चुप रहा।

"कर्ण, बोल, जवाब दे।"

"कुन्ती, मुझे जाने दो।"

"यों नहीं जा सकता। अपनी माता को इतनी-सी भीख दिये बिना तू नहीं जा सकता।"

"कुन्ती, तो ठीक है जाओ मैं नकुल और सहदेव को नहीं मारूंगा।"

"यह तो ठीकही है। नकुल और सहदेव के ऊपर तेरे जैसा धनुर्धारी हाथ उठाये तो यह हलकापन हुआ। वे क्या तेरी बराबरी के हैं? इसमें मुझे तूने क्या दिया?"

"कुन्ती, नकुल सहदेव को तो नहीं मारूंगा, पर भीम को भी नहीं मारूंगा।"

"भीम को! कहां तू और कहां भीम। मोटा शरीर होने से भीम क्या बड़ा होगया। भीम का तो औघड़-जैसा काम होता है। भीम तेरी विद्या भी तो नहीं जानता। इसलिए उसे मारने में तो खुद तुझे भी मजा न आयगा।"

"कुन्ती, कुन्ती, अब बस करो। मेरे दिल में न जाने क्या हो रहा है। यह आखिरी बार कहे देता हूं कि मैं युधिष्ठिर को भी लड़ाई में नहीं मारूंगा। जाओ, अब इसके आगे मांगोगी तो तुम्हें अपने कर्ण की सौगंध है।"

"बेटा, कुछ तो संतोष हुआ। पर मेरी मांग तो अधूरी ही रह गई। मैं तो मांगने वाली थी कि तू अर्जुन को मत मारना।"

"कुन्ती, अगर तुम्हें यही मांगना है तो अपने ही हाथों मुझे मार डालो, यही अच्छा है। अर्जुन को न मारने का वचन देना यह मेरे लिए आत्म-हत्या कर लेना है। दो दिन के बाद जो युद्ध होनेवाला है वह पांडव और कौरवों के बीच नहीं बल्कि मेरे और अर्जुन के बीच होगा। दुर्योधन ने यह सारी लड़ाई मेरे बल पर मोल ली है। और मैं तुमको यह वचन दे दूँ इसकी अपेक्षा प्राण त्याग करना बेहतर है। कुन्ती, अब जाओ।"

"तो बेटा, यह चलो। मैं आयी थी तुम्हें लेकर पांच के छः पांडव करने की आशा से। लेकिन अच्छा जाती हूं पांच के चार पांडव करने का समाचार लेकर। अच्छा बेटा, अब पुत्र माताओं को इसी प्रकार से संतोष देंगे! क्यों, बोलता क्यों नहीं?"

"तो कुन्ती, खड़ी रहो। सुनो, एक बात कहता हूँ। लड़ाई में अगर अर्जुन मारा जायगा तो कर्ण पाण्डवों के साथ मिल जायगा। परन्तु...आज तो

यह विचार करना ही व्यर्थ है। थोड़ी देर के लिए अगर काल की चादर को चीरकर उस पार देखता हूँ तो दीखता है कि श्रीकृष्ण जिसके सारथी हैं ऐसे अर्जुन की ही विजय है। और उसके हाथों ही मेरी मृत्यु है। अस्तु। जो होना होगा वह होगा। अगर अर्जुन रणभूमि में काम आयगा तो मैं तुम्हारा हो जाऊंगा। और मैं काम आऊंगा तो कुछ कहना है ही नहीं। पाण्डव पांच के छः नहीं हो सकते उसी प्रकार पांच के चार भी नहीं होंगे। यह निश्चित है। बस, अब तुम जाओ।"

"कर्ण, एक बात पूछने की इच्छा होती है। पूछूं ?"

"खुशी से पूछो।"

"कल श्रीकृष्ण को तूने क्या वचन दिया था ?"

"श्रीकृष्ण को ! कुछ भी नहीं। कुन्ती, श्रीकृष्ण मेरे पास एक राजनैतिक पुरुष की हैसियत से आये थे। उनकी बातों में मेरी महात्वाकांक्षाओं को पोषण मिलने वाली चीजें थीं। श्रीकृष्ण ने मेरे सामने राजपाट रखा, राजमुकुट रखा, प्रतिज्ञा रखी, ऐश्वर्य रखा, स्वर्ग रखा; परन्तु उनको मालूम नहीं है कि मेरे मन में तो दुर्योधन की मैत्री के सामने इन सबका कोई मूल्य नहीं है। कुन्ती, एक बात कहे देता हूं। तुम आज यह वचन लेकर जा रही हो, उसका कारण समझीं ?"

"नहीं तो।"

"तुम्हारी माता के रूप में जीत हुई है। तुमको शुरू में जब देखा था उस समय तो मैं क्रोध से कांप रहा था पर तुम्हारे सामने मेरा क्रोध टिक नहीं सका। कुन्ती, जन्म देनेवाली माता के अन्तर में कितना स्नेह होता है यह मुझे आज मालूम हुआ। मुझे आज ऐसा लगता है कि पाण्डव और कौरवों के बीच सन्धि करने के लिए श्रीकृष्ण के बदले तुम और गान्धारी आयी होतीं तो यह लड़ाई रुक सकती थी।

"राजनैतिक पुरुष चाहे जितनी संधि-चर्चाएं करें परन्तु उनके हृदय में तो युद्ध ही होता है। इस कारण उनके हाथों जगत को शान्ति मिल ही नहीं सकती। उनके मुंह में चाहे जितने मीठे शब्द हों तो भी उन शब्दों

के गर्भ में ज़हर होता है। कुन्ती, जगत की अशांति और तूफान अगर किसी दिन शांत होने वाले होंगे तो वे हमारे जैसे योद्धाओं से या श्रीकृष्ण जैसे राजनेताओं से भी शांत नहीं होंगे। यह तूफान, यह सर्वनाश, यह अराजकता और यह वैर-भाव शांत होगा जगत की माताओं से। इसका आज मुझे विश्वास हो गया है। जगत को इस प्रकार के महाभारतों में से बचा लेने के लिए न तो वीरों की ज़रूरत है और न चालाक राज-नैतिक पुरुषों की, न बड़े-बड़े व्यापारियों की और न बड़े-बड़े कारीगरों की। ज़रूरत है केवल एक माता की। लेकिन आज तो यह सब व्यर्थ है। युद्ध के डंके बज चुके हैं और काल सबको बुला रहा है। कुन्ती, अब जाओ। बहुत देर हो गई है।"

कुन्ती उठ खड़ी हुई। उसने कर्ण का सिर सूंघा। कर्ण ने झुक कर कुन्ती के पैर छुए और मां-बेटे एक दूसरे को देखते-देखते अलग हुए।

: ६ :

दानवीर

कर्ण अपने लता-मण्डप में खड़ा-खड़ा जप कर रहा था। ऊपर आकाश में सूर्यनारायण तप रहे थे। नौकर ने आकर कहा—"महाराज, दरवाजे पर एक ब्राह्मण आकर खड़ा है, वह अन्दर आना चाहता है।"

कर्ण के मुंह पर आनन्द की रेखा चमक उठी। उसके शरीर में नया जोर आगया। "जाओ, उन महात्मा को अन्दर ले आओ।"

थोड़ी ही देर में कर्ण के आसन के पास एक ब्राह्मण आकर खड़ा हो गया। उसका कद छोटा था, आंखों में चपलता थी, कंधे पर जनेऊ था, गले में रुद्राक्ष की माला थी और हाथ में कमंडल था।

"पधारिए, महाराज!"

"कर्ण!"

"महाराज, क्या आज्ञा है? आप ज़रा सामने तो आइए जिससे मैं आपके दर्शन कर सकूँ।"

"राजन्, सम्मुख तो फिर आऊँगा, पहले तुम यह वचन दो कि मैं जो मांगूंगा वह तुम मुझे दोगे।"

"महाराज, आप नहीं जानते कि मैं मध्याह्न तक जप करता हूं। इस बीच कोई भी ब्राह्मण आकर मुझसे जिस किसी चीज़ की मांग करता है वह मैं अवश्य पूर्ण करता हूँ।

"मैंने तुम्हारे विषय में ऐसा ही बहुत कुछ सुना है इसलिए तो मैं बहुत दूर से आ रहा हूं।"

"बोलिए महाराज, क्या इच्छा है ?"

"इच्छा ? यों देखो तो कुछ नहीं, बिलकुल ज़रा-सी है। फिर भी मुझे भय है कि शायद वह पूरी न हो।"

"अच्छा ! आपको ऐसा मालूम होता है कि कर्ण अपनी प्रतिज्ञा भंग करेगा !"

"हां, मुझे इसका भय है।"

"तो फिर आप कर्ण को पहचानते नहीं हैं। सुनिए जिस दिन कर्ण का वचन मिथ्या होगा उस दिन सूर्य पश्चिम में उगेगा। आप मांगिए।"

"मांगूं ? पर अब मेरे मन में ऐसा आता है कि मैं वापस चला जाऊँ। तुम सुख से रहो।"

"नहीं, नहीं, खुशी से मांगिए। संकोच बिलकुल न करें।"

"कर्ण, अच्छा तो फिर मांगता हूँ। तुम अपना यह कवच और कुण्डल उतार कर मुझे दे दो।" इतना कहते-कहते ब्राह्मण का मुंह काला पड़ गया। उसके सारे शरीर पर पसीना आ गया।

कर्ण के मुंह पर हास्य की रेखा छा गई। उसके शरीर में रोमांच हो आया। अपने शरीर पर से वह कवच और कुण्डल उखाड़ने लगा। सांप को केंचुल उतारने में जितनी देर लगती है उतनी ही देर में कर्ण ने कवच और कुण्डल उतार कर दे दिये। उसका सारा शरीर छिल गया। खून की धार-सी बहने लगी। आकाश में सूर्यनारायण एक काले से बादल

की आड़ में छिप गये। मण्डप के पक्षीगण चहचहाने लगे। लताओं ने पुष्पों की वृष्टि की।

"लीजिए महाराज, ये कवच और कुंडल। अब तो आप सामने आइए। बगल में क्यों खड़े हैं ?"

"मेरी तबीयत इस समय ठीक नहीं है, इसलिए अब मुझे जाने दो। मैं अपनी वस्तु पा गया। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

ब्राह्मण ने विदा ली। कर्ण उसको जाते हुए देखता रहा। वह ब्राह्मण थोड़ी ही दूर गया था कि फिर रुक गया और नीची गर्दन किये चुपचाप कर्ण के सामने देखने लगा।

"महाराज, खड़े क्यों रह गये ? और कोई दूसरी इच्छा है ?" कर्ण ने प्रश्न किया।

"यह द्वार बन्द है।"

"मैं यहां से देख रहा हूं, वह खुला है। आपको कोई नहीं रोकेगा। आप निःशक होकर जाइये।"

ब्राह्मण दो क़दम आगे जाकर फिर रुक गया।

"क्यों महाराज, रुक क्यों गये ? आप सुखपूर्वक पधारिये।"

"राजन्, मेरे पैरों में अब आगे जाने की शक्ति नहीं रही।"

'महाराज,आपको जहां जाना होगा वहां मेरा रथ आपको छोड़ आयगा।'

कर्ण ने नौकर को रथ लाने का आदेश दिया। रथ हाज़िर हुआ। लेकिन ब्राह्मण अपनी जगह पर खड़ा ही रहा।

"महाराज, अब पधारिये, रथ तैयार है।"

ब्राह्मण के पैर रथ की तरफ जाने के बदले कर्ण की तरफ उठे। फिर वह कर्ण के पास आकर खड़ा हो गया।

"क्यों महाराज, और कोई आज्ञा है ?"

"हां, एक आज्ञा है। तुम मुझसे कुछ मांगो।"

"मेरे लिए आपका आशीर्वाद ही काफी है। आप मेरे सामने नहीं आते हैं यही मैं अपना दुर्भाग्य समझता हूं।"

"दुर्भाग्य तो मेरा है बेटा, तूने मुझे पहचाना नहीं।"

"मैंने आपको पहचान लिया है। आप अर्जुन के पिता इन्द्र हैं।"

"कर्ण, आश्चर्य की बात है! मैं इन्द्र हूँ यह तुझे कैसे मालूम हुआ?"

"यह आप जानते ही हैं कि जिस प्रकार आप अर्जुन के पिता हैं उसी प्रकार सूर्यनारायण मेरे पिता हैं। जैसे आप दिन रात अर्जुन की चिंता किया करते हैं, वैसे ही सूर्यनारायण मेरी चिंता किया करते हैं। आप ब्राह्मणवेश में मेरे कवच-कुंडल लेने के लिए आने वाले हैं, इसकी सूचना उन्होंने मुझे कल ही स्वप्न में दे दी थी।"

"बेटा कर्ण, तू यह क्या कहता है? मैं इन्द्र हूँ यह भी तू जानता था? यह मैं अर्जुन के लिए ले जाता हूं यह भी तू जानता था?"

"यह सब सूर्य भगवान ने मुझे बता दिया था।"

"फिर भी तूने यह सब मुझे क्यों दे दिया? युद्ध में तुझे भी तो विजय की आशा होगी ही।"

"होगी नहीं, है ही। उस विचार से तो मुझे आपको इन्कार करना चाहिए था। लेकिन मैं कर्ण हूं। मेरी प्रतिज्ञा है कि जप करते समय अगर कोई कुछ मांगने वाला आता है तो वह खाली हाथ नहीं जायगा। मेरी यह प्रतिज्ञा टल नहीं सकती।"

"सूर्यनारायण ने तुझे ऐसा करने से मना तो किया ही होगा।"

"वह तो मना ही करेंगे। आप अर्जुन के लिए जितना परिश्रम उठाते हैं, कपटवेश धारण करते हैं, झूठ बोलते हैं, तो पिता के हृदय को तो मेरे बजाय आप अच्छी तरह जानते हैं।"

"कर्ण", देवराज इन्द्र कर्ण के पैर छूते हुए बोले—"कर्ण, तू अभिनंदनीय है। मैं पहले-पहल जब तेरे पास आया था तो तेरे बगल में ही खड़ा रहा था। सामने खड़ा रहकर तेरा तेज सहन करने की ताकत मुझमें नहीं थी।"

"अब आप सुखपूर्वक पधारिए। रथ तैयार है।"

"कर्ण, पर क्या तू यह समझता है कि मेरे पैर दर्द करते थे इसलिए मैं नहीं जाता था या द्वार बंद था? बेटा, द्वार तो आज मेरे अंतर के खुल गये।"

"तब आप क्यों नहीं जाते थे ?"

"कैसे जाया जाय ? ये कवच और कुण्डल उतरवाने के बाद मेरे दिल पर कितना भारी बोझा होगया है इसका तुम्हें क्या पता है। दूसरे का सारा जीवन मांगकर चला जाना कितना कठिन होता है, यह अगर अनुभव करना हो तो मेरे दिल के अन्दर प्रवेश करके देखें कि दैत्यों को मारने वाला इन्द्र आज इतना अशक्त होगया है कि एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकता।"

"देवराज, मुझे लज्जित न कीजिये।"

"कर्ण, एक बात पूछना चाहता हूं।"

"अवश्य पूछिये।"

"कवच और कुण्डल उतारते समय तुम्हारे मन में कुछ भी संकोच नहीं हुआ ?"

"संकोच कैसा ? और संकोच हो भी तो आपको होना चाहिए। मुझे क्यों ? मैंने तो सूर्यनारायण से कह दिया था कि इन्द्र जैसे देवता ब्राह्मण का रूप धारण करके मेरे घर मांगने आवें, यह तो मेरा अहोभाग्य होगा।"

"कर्ण, तेरे ये वचन सुनता हूं तो मेरे सारे शरीर में एक जलन-सी होती है। तुझे क्या ऐसा नहीं लगा कि इन कवच और कुण्डलों के चले जाने से फिर तुम अर्जुन के सामने टिक नहीं सकोगे। इस विचार से भी तुमने मना नहीं किया ?"

"आप यह समझ लीजिये कि अर्जुन से तो मैंने आज ही लड़ाई लड़ ली और अर्जुन की उस में हार हुई है। जहां देवराज इन्द्र को अर्जुन की विजय के लिए मेरे जैसों से कवच और कुण्डलों की भीख मांगनी पड़े यह अर्जुन की पराजय नहीं तो और क्या है ? भले ही फिर दृश्य-संग्राम में अर्जुन का शरीर मेरे बजाय ज्यादा टिके। आप सुखपूर्वक पधारिये। अर्जुन से कहियेगा कि 'यह तेरे लिए विजय ले आया हूं।' अब कर्ण का देह अभेद्य नहीं रहा इसलिए तेरे बाण उस पर काम करेंगे।"

"कर्ण, एक मेरी बात मानोगे"?

"आज्ञा कीजिए।"

"आज्ञा-वाज्ञा तो जाने दो। मुझसे तुम कुछ मांगो।"

"बस, मैं तो आपका आशीर्वाद चाहता हूं।"

"नहीं, इसके अलावा और कुछ मांगो।"

"आपके पास से और कुछ मांगने की इच्छा नहीं होती।"

"लेकिन जब तक तुम मांगोगे नहीं मुझसे यहां से जाया नहीं जायगा। न जाने कौन मुझे यहां रोक रहा है। मुझसे एक डग भी आगे नहीं बढ़ा जाता। मेरे दिल में न जाने क्या हो रहा है। तुम कुछ मांगो।"

"अगर ऐसा है तो आप जो देना चाहें वह दे दीजिए।"

"नहीं यों नहीं। तुम स्वयं मांगो, तो ही मुझे शांति मिलेगी।"

"तो सूर्यनारायण ने जो सुझाया, वही क्यों न मांगू ? अच्छा तो आपके पास जो अमोघ-शक्ति है वही मुझे दीजिए।"

"कर्ण, ठीक याद दिलाया। लो, यह मेरी अमोघ-शक्ति। तुमने उचित वस्तु मांगी है। इस अमोघ-शक्ति का ऐसा नियम है कि जिस पर इसका प्रयोग करोगे वह मनुष्य अवश्य ही मरेगा। फिर वह चाहे जो हो। परन्तु इसका प्रयोग तुम एक बार ही कर सकोगे।" यह कहकर इन्द्र ने कर्ण को अपनी अमोघ-शक्ति दे दी।

"बेटा कर्ण, इन कवच और कुण्डलों का भार अब कुछ हलका हुआ। अब मैं जा सकूंगा। मैंने तुम्हारे कवच और कुण्डल उतरवाये, यह विचार ही अभी तक मुझे चुभ रहा है। लेकिन मैं उसके बदले में कुछ दे भी सका हूं इससे मुझे कुछ शांति मिली है। इस अमोघ-शक्ति का प्रयोग तू अर्जुन पर भी कर सकता है। किसी भी एक व्यक्ति पर और केवल एक बार इसका प्रयोग करना। तो अब जाता हूँ। परमात्मा तेरा कल्याण करें।"

इन्द्र कर्ण के कवच कुण्डल लेकर अपने लोक में गये और कर्ण अमोघ शक्ति लेकर अपने महल में गया।

: ७ :

सेनापति कर्ण

दुर्योधन के खीमे में एक पलंग पर मद्रराज शल्य बैठे हुए थे। उनके सामने दुर्योधन बैठा हुआ था।

"महाराज दुर्योधन, मुझे क्यों याद किया ?"

"महाराज, आप जानते हैं कि हमारी शक्ति दिन पर-दिन कम होती जाती है। भीष्म बाण-शैया पर सोगये और कल द्रोणाचार्य भी रणभूमि में काम आगये। ये दोनों जब तक थे तब तक मुझे कुछ देखना नहीं था। लेकिन आज तो अब सेनापति किसे बनाया जाय, यही एक बड़ा प्रश्न सामने है।"

"महाराज, अपनी सेना में वीर योद्धाओं की कहां कमी है ?"

"तो मैं संक्षेप में सब आपको बताये देता हूं। इस समय रात के दो बजे हैं। और सुबह पांच बजे युद्ध शुरू करना है। कर्ण को सेनापति बनाने का मैंने निश्चय किया है।"

"उस सूतपुत्र को ! आपको और कोई दूसरा क्षत्रिय नहीं मिला ?"

"मेरे सामने सूतपुत्र और क्षत्रिय-पुत्र का सवाल नहीं है। मुझे पांडवों को हराना है। इसलिए जो पांडवों के सामने टिक सके, वही मेरा सेनापति है। यह निश्चय तो हो चुका है।"

"जब निश्चय हो चुका है, तो मुझसे फिर पूछना क्या ?"

"आपसे तो दूसरी ही बात पूछनी है।"

"क्या ?"

"कर्ण अर्जुन का प्रतिद्वन्द्वी है। कर्ण का विचार है कि वह कल अर्जुन को मारे। और पांडवों का सारा आधार अर्जुन पर है।"

"कर्ण तो कौआ है। उसे बस कांव-कांव करना ही आता है।"

"जरा सुनो तो। यों तो कर्ण और अर्जुन दोनों बराबर जैसे ही हैं।"

"तो फिर कल ही अर्जुन को मारकर अपना अभिषेक करा लीजिये

न ! फिर तो यह सारी झंझट मिट जायेगी। भीष्म के बदले पहले कर्ण को ही सेनापति क्यों न बनाया ?"

"मद्रराज, ऐसे उतावले न बनो। हम दोनों का समय जाता है।"

"तो मुझे जो कहना हो जल्दी कह दीजिए।"

"कर्ण और अर्जुन दोनों बराबरी के योद्धा हैं, पर अर्जुन के पास तो कृष्ण हैं।"

"तो कर्ण को भी एक कृष्ण लाकर दे दो। कर्ण की जाति में कृष्ण ही कृष्ण भरे पड़े हैं।"

"शल्य, ऐसा न बोलो ! कर्ण का कहना है कि जिस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ हांकते हैं उसी प्रकार अगर मद्रराज शल्य मेरा रथ हांकें तो कुन्ती-पुत्र कल जिन्दा नहीं बच सकता।"

"महाराज दुर्योधन, आपके सिवा किसी और ने अपने मुंह से ये शब्द निकाले होते तो उसका सिर धड़ से जुदा कर देता। मैं मद्रदेश का राजा हूं। मुझे लड़ना तो चाहिए था अपने भानजे नकुल और सहदेव की तरफ से, परन्तु आपके साथ के संबंध की वजह से मैं इस तरफ आया हूं। कर्ण जैसे सूत-पुत्र का रथ मद्रराज शल्य हांके, यह कहते हुए आपको शरम नहीं आई !"

"मद्रराज, रोष न करो। इस समय ज्यादा वक्त नहीं है। कर्ण को सेनापति नहीं बनाते हैं तो कल ही हम लोग हारने वाले हैं। आप अगर सारथी न होंगे तो कर्ण सेनापति नहीं होगा। इसलिए आप मेरी यह बात स्वीकार करने की कृपा करें।"

"दुर्योधन, उस मिथ्याभिमानी, डरपोक दासी-पुत्र का सारथी होना मेरे लिए मृत्यु के समान है।"

"परन्तु यह कौरवराज दुर्योधन आपके पैरों पड़कर यह मांगता है। इसे स्वीकार करो।"

"दुर्योधन, दुर्योधन, जिसके बदले सेनापति होने लायक मैं हूं, उसे आज आप सारथी बनने के लिए कहकर महान् अधर्म कर रहे हैं !"

"यह अधर्म तो मैं कर रहा हूँ न, पर दुर्योधन तो आपके पैरों पड़ रहा है। मेरी खातिर आप इसे स्वीकार कर लीजिए।"

"उस कौए के साथ मेरी नहीं पटेगी।"

"यह मैं देख लूंगा। आप स्वीकार कर लें। फिर सब मैं ठीक कर लूंगा।"

"लेकिन दुर्योधन, मैं एक ही शर्त से यह बात स्वीकार कर सकता हूं और वह यह कि मैं जो कुछ कहूँ, कर्ण उसका जवाब न दे।"

"आपकी शर्त मंजूर है। कर्ण से कह दूंगा। कहो अब तो सारथी होना स्वीकार है ?"

"स्वीकार है।"

"मद्रराज, आपने मुझे आज अपना बड़ा आभारी बना लिया है। अब कल कुन्ती का पुत्र जरूर रणभूमि में सोयेगा इसमें मुझे जरा भी शंका नहीं है। मैं कर्ण को अभी सूचना देता हूं। आप भी सज्ज होकर आ जायं ?"

दुर्योधन और शल्य एक-दूसरे से जुदा हुए।

× × ×

महाभारत के युद्ध का सोलहवां दिन था। एक सुन्दर रथ में बैठकर कर्ण पाण्डवों की सेना का संहार कर रहा था। कृपाचार्य, अश्वत्थामा, महावीर कर्ण की रक्षा कर रहे थे।

"शल्य, मेरे रथ को ठीक अर्जुन के रथ के सामने ले चलो। आज शाम तक अर्जुन का नाश होना ही चाहिए।"

"अरे दासीपुत्र, बकवास क्यों करता है ! कौए ने कभी हंस को मारा है ? कहां तू सूत-पुत्र और कहां पृथा-पुत्र अर्जुन ! आज तक तूने अपने मुंह बहुत बड़ाई मारी है। आज यहां बड़ाई मारने से काम नहीं चलेगा।" शल्य ने रथ हांकते-हांकते कहा।

कर्ण सुस्त पड़ गया।

× × ×

"शल्य, रथ को ज़रा इस तरफ लाओ।"

"उस तरफ तो आगे भीम खड़ा है।"

"कौन, भीम है? लाओ तो इसी को झपाटे में ले लूं"

"अरे राधा के नादान लड़के, कल ही तो अकेले घटोत्कच ने तुम्हारी सारी सेना में हाहाकार मचा दिया था, यह भूल गया है। तुझे भी उस समय मुश्किल पड़ गई थी और अन्त में अमोघ-शक्ति का उपयोग करके उसका संहार करना पड़ा था। यह भूल गया क्या? उसी घटोत्कच का बाप यह भीम है। भीम के साथ लड़ने का इतना शौक था तो जब उसने दुःशासन की छाती का खून पिया तब उसके सामने आना था न!"

कर्ण फिर सुस्त पड़ गया।

× × ×

"अर्जुन! कहां है अर्जुन!!" महाराज युधिष्ठिर हांफते-हांफते बोले।

"अर्जुन आरहा है महाराज!" श्रीकृष्ण ने कहा।

"क्यों महाराज, मुझे क्यों याद किया?" अर्जुन ने पूछा।

"मुझे अब युद्ध नहीं करना। मैं पहले ही कहता था कि मत लड़ो। परन्तु तुम और भीम नहीं माने।"

"पर महाराज, हुआ क्या? यह तो कहिए। जरा शान्त होइये। बात क्या है?"

"यह मैं मरते-मरते बचा हूं। कर्ण के झपट्टे से बचना कितना मुश्किल होता है, यह आज मुझे मालूम हुआ है। तेरा रथ तो श्रीकृष्ण हांकते हैं। और तू बैठे-बैठे मौज से लड़ता रहता है। भीम की जिधर मर्जी होती है उधर वह कूदता रहता है। सहना तो सब मुझे पड़ता है। मैं अब युद्ध नहीं करने का। ऐसा राजपाट मुझे नहीं चाहिए।"

"महाराज, आप जरा शांत हो जाइए। आप ज्यादा बोलेंगे तो अर्जुन को जोश आयेगा और व्यर्थ ही आपस में क्लेश होगा। आप सुखपूर्वक अंदर डेरे में पधारिये। फिर कर्ण क्या करता है, यह अर्जुन देख लेगा।" घोर-गंभीर स्वर में श्रीकृष्ण बोले।

"यह भी तो आप ही कहते हैं। अर्जुन तो बोलता ही नहीं है। मैंने

शुरू में मना किया था कि मैं युद्ध करना नहीं चाहता। पर इनमें से कोई भी नहीं माना। और बीच में द्रौपदी और पानी चढ़ाती रहती थी।"

"महाराज, आप शान्त होइये और डेरे में जाइये।" श्रीकृष्ण ने सारथी को तम्बू में रथ ले जाने को कहा।

× × ×

अश्वसेन नामक एक सर्प था। बरसों पहले जब अर्जुन ने खाण्डव-वन जलाया था तब उस वन में से अश्वसेन बड़ी मुसीबत से अपने बाल-बच्चों को लेकर भाग गया और पाताल में जाकर रहा था। महाभारत युद्ध शुरू होने की बात जब अश्वसेन ने सुनी तो उसकी पुरानी वैराग्नि जगी और उसका बदला लेने के लिए वह कुरुक्षेत्र में भटकने लगा।

कर्ण और अर्जुन दोनों आमने-सामने लड़ रहे थे। दोनों कुशल लड़वैये थे। सारथी भी दोनों के कुशल थे। बल्कि सारथी के काम में तो शल्य श्रीकृष्ण से दो कदम आगे ही रहते थे। रथ के घोड़ों को इधर-उधर फिराकर, अनेक शस्त्रास्त्रों को आज़माकर और एक-दूसरे का वध करने की आशा मन में रखकर कुन्ती के दोनों पुत्र संग्राम में शोभित हो रहे थे।

कर्ण ने धनुष पर एक सर्पाकार बाण चढ़ाया। अश्वसेन कर्ण के रथ के पास ही फुङ्कार मारता हुआ भटक रहा था। सर्पाकार बाण देखकर वह तुरन्त ही उल्लास से भर गया और कर्ण की निगाह जाने से पहले ही उसने अपने शरीर को बाण के ऊपर बराबर जमा लिया। केवल शल्य ही इसे जानते थे।

कर्ण अपनी छाती तानकर सीधा होगया। बाण धनुष पर चढ़ा हुआ था। प्रत्यंचा खींचने की ही देरी थी। कर्ण के मन में यह था कि अगर अर्जुन के ठीक कपाल में यह तीर लगा तो यह एक ही बाण अर्जुन का अन्त कर देगा।

"शल्य, सावधान हो जाओ। देखना यह एक ही बाण अर्जुन का प्राण ले लेगा।"

"हारने वाले ही ऐसी बात कहा करते हैं। लेकिन कर्ण, देख अगर

तुझे अर्जुन के प्राण लेने ही हों तो उसके कपाल का निशाना साधने के बदले गले का निशाना साध।"

"मद्रराज, कर्ण ने एक बार जो निशाना साध लिया सो साध लिया। फिर ध्रुव भले ही टल जाय लेकिन कर्ण का निशाना नहीं टल सकता।"

बराबर सीधे होकर कर्ण ने बाण छोड़ा। सामने अर्जुन का रथ था। और अश्वसेन अपने जीवन के सम्पूर्ण वैर को अपनी दाढ़ों में इकट्ठा करके कर्ण के बाण के साथ चिपटा हुआ था। उसके मन में एक ही बात थी कि कब बाण छूटे और कब अर्जुन को डसूं।

लेकिन अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण ने उस सर्प को देख लिया। खाण्डव-वन के समय के उसके वैर को उन्होंने परख लिया और एक ही क्षण में रथ के घोड़ों को घुटनों के बल इस तरह बिछा दिया कि सारा रथ नीचे झुक गया और कर्ण का बाण और सर्प अर्जुन के कपाल के बदले उसके मुकुट को लेकर दूर जा गिरा। कर्ण का निशाना खाली गया।

× × ×

"कर्ण! कर्ण!"

रथ पर से कर्ण ने पीछे देखा।

"कौन है?"

"मैं अश्वसेन सर्प।"

"क्यों, क्या काम है?"

"तुम अर्जुन को मारना चाहते हो न?"

"यह तो सब कोई जानता है। लेकिन उससे तुम्हें क्या?"

"मैं भी अर्जुन का कट्टर दुश्मन हूँ। इसीलिये यहां आया हूँ। मुझे तुम अपने बाण पर एक बार फिर चढ़ने दो। फिर तो इस बाण से अर्जुन को मरा हुआ ही समझना। पहली बार तुमसे भूल हुई इससे निशाना चूक गये। अब मैं दूसरी बार चढ़ने आया हूँ।"

"पहली बार तुम बाण पर चढ़े थे। कैसे चढ़ गये? मुझे तो खबर ही नहीं। शल्य, तुमको खबर थी?"

"मुझे खबर थी इसीसे तो मैंने कहा था कि कपाल का निशाना साधने के बदले कण्ठ का निशाना साधो। लेकिन कर्ण अभिमान में किसी की सुने तब !"

"लेकिन शल्य, इसके लिए मुझे जरा भी अफसोस नहीं है। भाई अग्रसेन, तुझे बाण पर चढ़ाकर मैं अर्जुन को जीतना नहीं चाहता। ऐसे अधर्म से अर्जुन को जीतने की कर्ण की जरा भी इच्छा नहीं है।"

"कर्ण, और विचार करलो। मेरे जैसा सर्प आकर तुमसे विनती करता है। उसका अनादर करोगे तो बाद में पछताना पड़ेगा।"

"इसकी चिंता नहीं। यह सब मैं देख लूंगा।"

और कर्ण का रथ आगे बढ़ गया।

: ८ :

कर्ण का अंत

"शल्य, यह रथ का पहिया जमीन में धंसा जा रहा है। इसे जरा बाहर तो निकालो।"

"यह काम मेरा नहीं है।"

"ठीक है, जब पृथ्वी खुद ही पहिये को पकड़ने लगे तो उसे मेरे बिना निकाले भी कौन ?"

कर्ण रथ से नीचे उतरा और पहिया जमीन में से निकाल कर और ठीक करके फिर रथ में बैठ गया। इतने में पहिया जमीन में फिर धँस गया।

"शल्य, जरा ठहरो मैं नीचे उतरता हूं।"

कर्ण फिर नीचे उतरा और पहिया हाथ में लिया। सामने से अर्जुन के बाण तो बरस ही रहे थे।

"अर्जुन", श्रीकृष्ण ने कहा—"तू अपना हमला जारी रख। एक क्षण भी मत गँवाना।"

पहिये को हाथ से उठाकर ठीक करते-करते कर्ण बोला—

"पृथा के पुत्र अर्जुन, मेरे रथ का पहिया पृथ्वी में धंस रहा है। मैं

उसको जब तक निकाल कर ठीक न करलूं तब तक जरा ठहर जा। मैं रथ के नीचे खड़ा-खड़ा जमीन में से पहिया निकाल रहा हूं और तू रथ में बैठा-बैठा बाण बरसा रहा है, यह धर्म-युद्ध नहीं है।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण गरज उठे—

"कर्ण, धर्म-युद्ध की तेरी यह दलील सुनकर मुझे हंसी आती है। अपने सारे जीवन में तूने धर्म का आचरण भी किया है? पाण्डवों को लाक्षागृह में जला डालने की सलाह देते समय तुम्हारा धर्म-विचार कहां चला गया था? कौरवों की सभा में जब द्रौपदी खींचकर लायी गई तब 'पाण्डवों को छोड़कर अब तू दूसरा पति खोजले' ऐसी सलाह देनेवाले कर्ण का धर्म कहां गया था? पाण्डवों के बनवास के दिनों में उनको हैरान करने की युक्तियां खोजते समय कर्ण का धर्म कहां चला गया था? और अभी कल ही खिले हुए फूल के समान कोमल बालक अभिमन्यु को अकेले पाकर छः-छः बड़े-बड़े महारथियों ने हमला करके मारा था, उस समय कर्ण का धर्म कहां गया था? अर्जुन, झूठा धर्मभीरु न बन, इस कर्ण का वध कर।"

इधर कर्ण पहिया ठीक करके रथ में बैठा कि पहिया फिर जैसे-का-तैसा ही हो गया और उधर से अर्जुन के बाण तो बरस ही रहे थे। वह थोड़ी देर रथ में बैठा रहा। रोज चन्दन और धूपादि से जिसकी पूजा किया करता था वह ब्रह्मास्त्र कर्ण ने निकाला। लेकिन उसको चढ़ाने की क्रिया आज भूल गया था। हाथ में अस्त्र लेकर वह नीचे उतरा और फिर पहिये को ठीक किया।

"अर्जुन, जरा तो ठहर। क्षत्रिय-धर्म का विचार कर।"

कर्ण पहिये के पास जाकर दिङ्मूढ़-सा खड़ा रहा। उसके एक हाथ में रथ का पहिया और दूसरे हाथ में खाली अस्त्र था। सारा शरीर बिंध गया था। उसकी आँखों में अंधेरा छाने लगा। उसकी आंखों के सामने परशुराम और उनका आश्रम आगया। मृत्यु पास आती दिखायी दी। सारा मैदान शून्य जैसा दिखायी देने लगा।

"शल्य! शल्य!"

"क्यों कर्ण, क्या है ?"

"महाराज दुर्योधन कहीं दिखायी देते हैं ?"

"नहीं। क्यों कुछ काम है ?"

"मैं तो चला। जिसपर इतना विश्वास रखकर उन्होंने यह महाभारत शुरू किया वह कर्ण अब चला। महाराज को मेरा अन्तिम नमस्कार कहना। दुर्योधन की मैत्री का मैं कुछ बदला न चुका सका इसके लिए मुझे वह क्षमा करें।"

"और कुछ कहना है ?" शल्य ने पूछा।

"हाँ, एक बात और कहनी है। आज इस समय, जब मृत्यु मेरे सम्मुख आकर खड़ी है तब मुझे यह स्पष्ट दिखायी देता है कि इस युद्ध से शान्ति रखना व्यर्थ है। मैं अपने सामने इन योगेश्वर श्रीकृष्ण को देखता हूं। उन्हीं के हाथ में यह सारी बाजी है। भीष्म जब कहते थे तब मैं उनका मज़ाक उड़ाता था। दुर्योधन से कहना कि यह पृथ्वी किसी की नहीं है। न उनकी और न युधिष्ठिर की। मैं आज मर रहा हूं, दुर्योधन कल मरेगा, परसों युधिष्ठिर की बारी है। यह सारी अठारह अक्षौहिणी सेना मिट्टी के खिलौने के समान पृथ्वी पर सो जायगी। काल को तो यही भला लगता है। इसे कोई नहीं रोक सका और न रोक सकता है। श्रीकृष्ण, मैं तुम्हें साष्टांग नमन करता हूं। अर्जुन, तू अपने बाण छोड़े जा। वीरों के ही भाग्य में तेरे हाथों मरना होता है।"

उसके एक हाथ में रथ का पहिया और एक हाथ में परशुराम की विद्या का खाली अस्त्र था। सूर्य का पुत्र, राधा का पुत्र, दुर्योधन का परम मित्र कर्ण, पृथ्वी पर सोया और तुरन्त ही सूर्यनारायण ने पृथ्वी पर अन्धकार फैला दिया।

: ९ :

निर्वापाञ्जलि

महाभारत समाप्त हो गया। अठारह अक्षौहिणी सेना भी समाप्त हो गई। लाखों स्त्रियां विधवा हो गईं। लाखों बालक पितृहीन हो गए। खून की नदियों की गिनती ही नहीं थी। सारे कौरव पृथ्वी पर सो गए। पीछे रहे सिर्फ पांच पांडव, श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती।

युद्ध के अन्त में मरे हुए तमाम बन्धुओं को अर्घ्य प्रदान करने के लिए युधिष्ठिर यमुना के किनारे गये। कुन्ती साथ में थी। युधिष्ठिर अपने सारे कुल के वीरों के नाम याद कर-करके जल की अञ्जलि देते जाते थे।

"युधिष्ठिर, सब को अञ्जलि दे दी?"

"हां माँ, सबको दे दी।"

"फिर भी एक अञ्जलि रह गई।"

"नाम याद दिलाओ तो याद आये।"

"कर्ण को।"

"कर्ण को? कर्ण तो सूत-पुत्र था। वह तो राधा का लड़का है?"

"नहीं बेटा, कर्ण तो कुन्ती का पुत्र था।"

"माँ, तुम यह क्या कहती हो?"

"मैं ठीक कहती हूं। जैसे तुम मेरे, अर्जुन मेरा, वैसे ही कर्ण भी मेरा ही था।"

"कुन्ती माँ, तुमने सर्वनाश कर दिया। कर्ण मेरा बड़ा भाई है यह पहले से ही तुमने बता दिया होता तो आज यह दिन न आया होता। उसे मैं अपना बड़ा भाई मानता। हम सब उसकी आज्ञा मानते। माँ, तुमने बहुत बुरा किया।"

"युधिष्ठिर, शोक मत कर। जो होना था सो हो गया। विधाता को यही पसन्द था। कर्ण को अञ्जलि दे और चल। ये सब कौरव स्त्रियां विलाप करती हुई आ रही हैं।"

युधिष्ठिर ने कर्ण को भी अञ्जलि दी।

पांचाली

: १ :

बदला ! बदला !!

"वहां बगीचे में कौन घूम रहा है ?" आश्रम के बरामदे में से मुनि ने पुकारा।

"महाराज ! मैं द्रुपद हूँ। हवा में आज कुछ गरमी मालूम होती है। इसी से नींद नहीं आरही थी, सो यहां चला आया।"

"बेटा, यहां आओ। इस पौष के महीने की कड़कड़ाती सर्दी में तुझे गरमी लगती है। यह गरमी हवा में नहीं है; वह तो तेरे दिमाग़ में है। लेकिन राजन्, तुम इस प्रकार बदले और वैर के ही विचार कब तक करते रहोगे ?"

"महाराज, क्या करूं ? मेरा कोई बस नहीं चलता। कल मैं तालाब पर पानी पीने गया था तो वहां मैंने सिंह और हिरनों को साथ-साथ खेल करते हुए देखा, तब आपके कहे हुए वचन याद आये। आप अहिंसा की जो बातें करते हैं, वे मैंने वहां अपनी आखों से सच होती देखीं......"

"तो मेरी बातें तेरी समझ में पूरी तरह आ गईं ?"

"नहीं महाराज, ये सब बातें अपनी आंखों से देख चुकने के बाद भी मेरे मन में से बदला लेने के विचार शांत नहीं होते हैं। आप जिस समय द्रोण से प्रेम करने की बातें करते हैं, उस समय मुझे ऐसा लगता है मानो मेरे कलेजे में कोई भाले से छेद कर रहा है ? लेकिन आपके प्रभाव के आगे मैं अपने को दबा लेता हूँ, इससे कुछ बोल नहीं सकता।"

"द्रुपद, तो अब तेरे लिए मेरे पास कोई दूसरा रास्ता नहीं है। तू यहां से चला जा और दूसरा गुरू खोज ले।"

"महाराज, कृपा करके ऐसा न कहें। आपमें अगाध सामर्थ्य जानकर ही तो मैं आपके पास आया हूँ। अब मैं दूसरा गुरु खोजने कहाँ जाऊँगा?

अगर मैं आपको प्रसन्न नहीं कर सका तो यहीं आश्रम में अपने प्राण छोड़ दूंगा। लेकिन यह बात आप निश्चित समझिए कि शांति और प्रेम के विचार लेकर द्रुपद पांचाल के सिंहासन पर वापस नहीं जा सकता।"

"बेटा द्रुपद, तू मूर्ख है।"

"अगर मूर्ख न होता तो पांचाल राज्य छोड़कर आपके चरणों में क्यों आता ? मैं जब वहां से रवाना हुआ तब मेरी रानी भी मुझे मूर्ख ही कहना चाहती थी। लेकिन चाहे जो हो, मेरे मन में एक ही विचार इस समय है; और वह है, द्रोण से बदला लेना।"

"तेरे पिता पृषत् और द्रोण के पिता भारद्वाज दोनों बड़े मित्र थे। और फिर द्रोण तो तेरा गुरुपुत्र है, तुम दोनों एक ही मुनि के आश्रम में पढ़े। द्रोण के पिता ने तुम्हें विद्या दी। उस द्रोण से तू बदला लेगा ?"

"उसीसे बदला लूंगा। जब तक उसे मार न सकूं तब तक मुझे शांति न मिलेगी।"

"तो चटपट मार डाल न, जिससे शांति मिले।"

"यही तो सारी बात है। वह ब्राह्मण आज कौरवों का गुरु बन बैठा है न ! महाराज, जब वह बात याद करता हूँ तो मेरे सारे ज्ञानतन्तु उत्तेजित हो उठते हैं और मैं फिर होश में नहीं रहता। वह कंगला पांचाल के राजा के पास मैत्री की इच्छा से आता है और पांचाल देश का स्वामी अगर इन्कार कर देता है तो वह अपनी प्रतिष्ठा की खातिर फिर पांचालराज से बदला लेता है। यह अपमान तो कोई नपुंसक ही सहन कर सकता है, कौरवों और पांडवों के हाथों हुई अपनी पराजय को मैं सहन नहीं कर सकता। महाराज, मुझे शांत करने के बदले आप उत्साह दिलाइये, धीरज दिलाइये। आप अपने सामर्थ्य से मेरी मदद करने की कृपा करें तो ऐसे-ऐसे सौ द्रोणों को मैं बता दूं कि पांचाल का मालिक क्या कर सकता है। भगवन्, आप मेरी सहायता करो।"

"मैं तो बहुत ही तेरी मदद करना चाहता हूँ, लेकिन तुझे मेरी सहायता की जरूरत ही कहां है ?"

"महाराज, मुझे तो ज़रूरत है। उस दिन ग्रीष्म की भरी-दुपहरी में भटकता-भटकता यहां आया तब आप ही ने तो मुझे आश्रय दिया था। आपके यहां के इस शांति और अहिंसक वातावरण में भी वैर और बदले की बातें करता रहता हूं, फिर भी आपने मुझे अपने यहां टिका रक्खा है। नहीं तो क्या मैं यह नहीं जानता कि आपके इस आश्रम में लताओं और फूलों के पेड़ों पर से कोई फूल तक नहीं तोड़ता। महाराज, आपकी मुझ पर जो इतनी कृपा है, इसीसे तो मैं यहां पड़ा हुआ हूं। प्रभो, मुझे रास्ता बताइये, यही मैं आपसे चाहता हूं।"

"राजन्, तेरी सेवाओं को देखते हुए तो जो तू चाहता है वही देना चाहिए। तेरे आने के बहुत दिन बाद तक मैं तुझको पहचान नहीं सका। पांचाल देश का स्वामी मेरा मल-मूत्र उठावे, मेरे पैर दबाये, बीमारी में दिन-रात एक करके मेरी सेवा करे, आश्रम के पशुओं की रखवाली करे, उनको चराने को जाय, और आश्रम के और लोगों के धक्के खाय, फिर भी अपना चित्त शांत रख सके, इसके लिए तो द्रुपद तुझे शाबासी देनी चाहिए।"

"महाराज, ऐसी झूठ-मूठ की शाबासी किस काम की? अगर आप सचमुच मुझपर प्रसन्न हुए हों तो......"

"बोल-बोल रुकता क्यों है?"

"तो द्रोण का सिर उतारने वाला एक पुत्र मुझे दीजिए।"

"उपयाज क्या अपनी झोली में छोकरे भरे रखता है, कि कोई शिष्य मांगे तो तुरन्त उसके सामने फेंक दे?"

"महाराज, मेरा मजाक न उड़ाइये। मैं जानता हूं, इसीलिए कहता हूं। आप मुझसे ऐसा यज्ञ कराइए कि जिससे मुझे एक ऐसा पुत्र हो। मैं स्वयं तो अब ऐसी स्थिति में नहीं रहा कि द्रोण का वध कर सकूं। लेकिन फिर भी उसे मारने का विचार नहीं छोड़ सकता इसलिए यह मांगता हूं।"

"बेटा, मांगनेवाले तो बहुत-सी चीजें मांगते हैं, लेकिन मुझसे ऐसी चीजें थोड़े ही दी जा सकती हैं। दुनिया के वैर-भाव के वातावरण से छुट-

कारा पाने के लिए तो मैं यहां जंगल में आया हूं। और यहां आकर भी मैं अगर दुनिया के वैर-भाव की वृद्धि किया करूं तो यह मुझे और मेरे वेष को शोभा नहीं देता। बेटा, इस तरह का यज्ञ कराना मैं जानता जरूर हूं; मुझमें ऐसा यज्ञ कराने की शक्ति भी है, लेकिन मैं जानता हूं कि आज बरसों से मैंने अपने जीवन की दिशा बदल दी है इसलिए मैं अब ऐसे यज्ञ नहीं कराऊंगा।"

"महाराज!"

"महाराज-महाराज नहीं। सुन! तू तो कल का यहां आया है। पूर्वाश्रम में मैं कैसा था यह तू नहीं जानता। यह कथा बहुत लम्बी है। आज तो वह सारी दुहराता नहीं हूं। कभी तेरी इच्छा हो तो सामने के ताक में कुछ ताड़पत्र रक्खे हैं उनको पढ़ लेना तो समझ जायगा।"

"उसके बाद महाराज........."

"ठहर, लेकिन यह जीवन मुझे मृत्यु के समान लगा और फिर मैंने उधर से मुंह मोड़ लिया। एक दिन मैं स्वयं ही हिंसा में विश्वास करता था, लेकिन अब तो बरसों हुए मैंने उसका त्याग कर दिया है और यह मानने लगा हूं कि जब सारी दुनिया उसका त्याग कर देगी तभी लोगों को सुख और शांति मिलेगी।"

"लेकिन महाराज, मेरे लिए कोई रास्ता निकालिए न?"

"तेरे लिए भी यही रास्ता है। तू पांचाल का राजा क्यों है? मनुष्य केवल साढ़े तीन हाथ की भूमि का मालिक है। इससे जितनी ज्यादा थी उसे द्रोण ले गया तो भले ही ले गया। उसके पास अगर इससे भी ज्यादा होगी तो और कोई दूसरा ले जायगा। तेरी साढ़े तीन हाथ की जमीन का उपयोग करने के लिए अगर कोई तुझे इनकार करे तो उस दिन मेरे पास आ जाना। मैं इस आश्रम में तेरे लिए जमीन निकाल दूंगा।"

"महाराज, आप जो कहते हैं वह बुद्धि से तो समझ में आता है और अगर इसी तरह की बातें बार-बार सुनता रहूं तो शायद फिर द्रोण से बदला भी न ले सकूं। इसलिए जान-बूझ कर मैं अपने कान बन्द कर लेता हूं।

अब मैं आपसे अन्तिम बार पूछ लेता हूं कि आप मुझसे ऐसा यज्ञ करायेंगे या नहीं ?"

"हरगिज़ नहीं ।"

"दूसरा कोई मार्ग बतायेंगे ?"

"दूसरा गुरु खोज ले ।"

"कोई ऐसा दूसरा गुरु है ?"

"ऐसे गुरु तो ढेरों पड़े हैं। मेरे बड़े भाई याज ही हैं। सामर्थ्य में तो मैं उनके आगे कुछ भी नहीं हूं। हम जब पढ़ते थे तो हम सब में गुरुजी उन्हें पहला नंबर देते थे ।"

"वह मुझे यज्ञ करायेंगे ?"

"ज़रूर करायेंगे। वह स्वयं हिंसा में श्रद्धा रखते हैं। हिंसा-प्रधान यज्ञों से ही वह वेदादि की सार्थकता सिद्ध करते हैं। और मेरे-जैसों की अहिंसा को वह एक पागल का प्रलाप मानते हैं।"

'तो मैं उनके पास जाऊं ? और आप अपनी ओर से मेरे लिए उनको कोई संदेश देने की कृपा करेंगे ?"

"ऐसे संदेश तो तेरे ही हाथ में हैं। दक्षिणा खूब देना। जैसी मेरी सेवा तूने की है वैसी सेवा से वह खुश होने वाले नहीं हैं। उन्हें तो नगद नारायण चाहिए। जितना गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा।"

"इसकी तो कोई चिंता नहीं। महाराज, अब मैं आपसे विदा चाहता हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि मेरा मनोरथ सिद्ध हो। और फिर मैं अपना अन्त समय यहीं बिताऊं।"

"ऐसे कामों में आशीर्वाद तो सबको अपनी अन्तरात्मा की तरफ से ही मिलते हैं। तू सुखपूर्वक जा। तूने मेरी जो सेवा की है उसका मैं स्थूल रूप से कोई बदला नहीं चुका सका। हम दुबारा फिर न मिलें यही ठीक होगा। बदला लेनेवालों का अन्तकाल मेरे-जैसों के आश्रम में हुआ है ऐसा कभी सुना नहीं गया। जा, तू अच्छी तरह द्रोण से बदला ले। तेरा पुत्र द्रोण को मारे और द्रोण का पुत्र तेरे पुत्र को मारे और इसके पुत्र फिर

उसके पुत्र को मारें, इस प्रकार यह मार-काट की परम्परा खड़ी करके तुम लोगों को जो करना हो करो। इसमें तेरा दोष नहीं है। यह मैं देख रहा हूँ कि आज जगत् में वैराग्नि की लपटें उठ रही हैं। आने वाले पांच-पच्चीस वर्षों में, यह बदले और वैर का ज्वालामुखी फटेगा और उस समय फिर वह किसी के दावे दब नहीं सकेगा। लेकिन काल को यही पसन्द है। इसलिए इसके सामने किसीका उपाय काम नहीं देता।''

''महाराज, आपकी आज्ञा लेता हूँ। आपके आश्रम में रहकर मैंने जो-जो अपराध किये हों उनको क्षमा कीजिएगा।''

''मेरे भाई जैसा यज्ञ करायें वैसा यज्ञ करना; द्रोण का सिर उतारने-वाला पुत्र प्राप्त करना; उसके बाद तुझे शांति कैसी मीठी लगती है यह संसार में प्रकट करना। भगवान् काल ने इस संसार में जिन चक्रों को घूमने के लिये प्रेरित किया है उसके सामने तेरी हस्ती ही क्या है ? जा, भगवान् तुझे अच्छी मति दें।''

''प्रभो, जाता हूँ—आपका आशीर्वाद चाहता हूँ।''

''आशीर्वाद तो ईश्वर से माँग।''

द्रुपद आश्रम के दरवाजे की तरफ गया और उपयाज मुनि अपने ध्यान करने के कमरे में गये।

पूर्व दिशा में धीरे-धीरे लाली छा रही थी।

: २ :

पांचाली

द्रुपद याजमुनि के आश्रम में गया। याजमुनि ज़मीन पर पड़े-पड़े एक सड़ा-सा आम चूस रहे थे। इतने में दरवाजे पर उनकी नज़र पड़ी।

"क्यों भाई, किससे काम है?" आम चूसते हुए याजमुनि ने पूछा।

"मैं इस आश्रम के मुनि की तलाश में हूँ।"

"क्या काम है? मैं ही याज हूँ।"

अभी-अभी उपयाज मुनि के आश्रम से निकले हुए द्रुपद को विश्वास न हुआ।

"आप ही याजमुनि हैं?" द्रुपद ने पक्की बात जानने की गरज़ से पूछा।

"तुझे काम क्या है बतादे न! याज-उपयाज के फेर में क्यों पड़ता है? कोई यज्ञ वगैरा कराना है?" याज ने सीधा सवाल किया।

"जी हाँ।"

याजमुनि ने आम की गुठली और छिलका फेंक दिया और पूछने लगे—"कैसा यज्ञ कराना है?"

"ऐसा यज्ञ कराना है जिससे मुझे मेरे शत्रु का सिर उतारने वाला पुत्र मिले।"

"ओह! इसमें कौन बड़ी बात है? वेद में तो ऐसे बहुत-से यज्ञों का विधान है।"

"तो आप मुझसे ऐसा यज्ञ करायेंगे?"

"पर तेरी जात कौन है? कौन से शत्रु का सिर उतारनेवाला पुत्र चाहिए, आदि की मुझे पूरी जानकारी तो होनी चाहिए न? काम के महत्व के अनुसार दक्षिणा भी मिलेगी या नहीं, यह भी तो मुझे देखना होगा?"

"मैं हूँ पांचाल-राज पृषत् का पुत्र द्रुपद। द्रोण ने अपने शिष्यों द्वारा मुझे हराकर गंगा और यमुना के उत्तर का पांचाल का भाग मुझसे

छीन लिया है। मेरे पास सिर्फ दक्षिण भाग ही रह गया है।"

"द्रोण तो भारद्वाज का पुत्र है न ?"

"जी हाँ। द्रोण से बदला लेने के लिए मुझे एक समर्थ पुत्र की अभिलाषा है।"

"समझा। लेकिन यह काम कोई साधारण नहीं है। द्रोण समर्थ मनुष्य है। उसका सिर उतारनेवाला पैदा करना ज़रा मुश्किल ही है। लेकिन कोई बात नहीं।"

"महाराज, दक्षिणा की चिन्ता न कीजिएगा ; आपको एक लाख गाय के जितना धन दूंगा।"

"बस, काफी है राजन्। हम ब्राह्मणों को धन की कोई इच्छा नहीं है। यह तो काम जरा टेढ़ा है न, इसलिये दक्षिणा का विचार करना पड़ा।"

"तो यज्ञ कब शुरू करेंगे ?"

"मैं तो तुम्हारे साथ आज ही चल रहा हूँ। पहुँच कर दूसरे ही दिन यज्ञ शुरू कर देंगे। जब काम करना ही है तो फिर देर क्यों ? शुभस्य शीघ्रम्।"

×　　×　　×

द्रुपद की राजधानी में श्रौतविधि से यज्ञ की तैयारियां हो रही थीं। सप्त समुद्रों का जल आया था, अनेक कुओं का पानी मंगाया गया; गंगा और गोमती का पानी आया और तिल्ली, जौ, उड़द, चावल, नारियल वगैरा होम की अन्य वस्तुओं का तो कोई पार ही न था। इसी काम के लिए एक खास मण्डप बनाया गया था। मंडप के बीचों-बीच एक यज्ञ-वेदी बनायी गयी थी।

याजमुनि यज्ञ शुरू किया। रोज़ सुबह यजमान और यजमान-पत्नी आकर वेदी का पूजन करते, अपने दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली का खून निकालकर उससे याजमुनि को तिलक करते और प्रार्थना करके याचना करते कि "द्रोण का सिर उतारने वाला पुत्र हमें दीजिए।" याजमुनि आंखें मूंदकर दोनों हाथ उनके सिर पर रखते और उनके मनोरथ पूर्ण होने की भावना करते।

इस प्रकार यज्ञ का काम पूरे ज़ोर-शोर से चल रहा था। ब्राह्मणों की वेदध्वनि सारी राजधानी में गूंजने लगी। यज्ञ का धुंआं सारे नगर पर बिछने लगा। प्रतिदिन रात को गाँव की हवा में एक प्रकार की बेचैनी-सी बढ़ने लगती। और पांचाल के ब्राह्मणों के मन न जाने क्यों कुछ अस्वस्थ-से होने लगे। लेकिन पांचाल के राजमहल में तो आनन्द था। पांचाल के योद्धा लोग एक नये सरदार की प्राप्ति की आशा में हर्ष के मारे पागल हो रहे थे। उनकी तलवारें म्यान से बाहर निकलने को आतुर रहतीं।

इतने में यज्ञ की पूर्णाहुति का समय आया। यज्ञ में हवन करने का नारियल ब्राह्मणों ने तैयार रक्खा था। नियम के अनुसार महाराज द्रुपद सुबह के समय में वहां उपस्थित थे। राज्य-अधिकारी भी इस प्रसंग पर उपस्थित थे। हवन-कुण्ड में अग्नि के सामने लटकता हुआ लाल नारियल लेकर याज अंतिम आहुति देने को खड़े हुए।

"राजन्, यजमान-पत्नी कहां है? जल्दी बुलाओ।" याज ने जल्दी की।

"प्रधानजी, जाइए रानी को बुला लाइए।" द्रुपद ने कहा।

"लेकिन जल्दी हो जाइए। समय हो गया है।" याज ने कहा।

प्रधानजी जल्दी से गये और वापस आये।

"क्यों रानी कहां हैं? तुम्हें उनको बुलाने भेजा था न?" याज ने चिल्ला कर पूछा।

"महाराज, महारानी जी कहती हैं कि उन्होंने अभी स्नान नहीं किया है। और उनके शरीर का अङ्गराग वैसे-का-वैसा ही है।"

"स्नान नहीं किया है उससे क्या? कोई हर्ज नहीं है। जाओ, जल्दी बुला लाओ।" याजमुनि ने कहा।

प्रधान फिर बुलाने गये और फिर वैसे ही वापस आगये।

"क्यों रानीजी क्या करती हैं? सारे जीवन की मेहनत अब धूल में मिलानी है क्या? आतीं क्यों नहीं?" द्रुपद ने अधीर होकर कहा।

"महाराज, रानीजी कहती हैं कि उन्होंने अभी तक दतौन भी तो

नहीं किया है। इस तरह अशुद्ध रीति से कैसे आयें ?" प्रधान ने विनय-पूर्वक कहा।

"छिः छिः ! रानीजी को ऐसा किसने सिखा दिया ? और फिर ऐसे यज्ञों में तो अशुद्धि खास-तौर से फलप्रद होती है। इसलिए जाओ, रानीजी जैसी भी हालत में हों वैसे ही बुला लाओ और कहो कि आहुति का समय हो गया है। पलभर की भी देर न करें। काल भगवान् के लिए यही मुहूर्त ठीक है, इसलिए देर न करो।"

प्रधान शीघ्र ही गये और पांचाल की रानी को लेकर वापस आये। रानी द्रुपद के पास हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी।

याज ने शुद्ध मंत्रोच्चार से पूर्णाहुति का नारियल होम दिया और तुरंत ही यज्ञ की वेदी में से घोड़े पर बैठा हुआ एक पुरुष बाहर आया। उसके कान में कुण्डल थे, शरीर पर कवच था और हाथ में शस्त्र थे।

"द्रुपद, ले यह तेरा पुत्र।" याज बोले।

घोड़े पर बैठे हुए उस पुरुष ने यज्ञशाला के बाहर घोड़े को खूब घुमाया और वापस यज्ञ-वेदी के पास आया। यज्ञ की इस प्रकार की तात्कालिक सिद्धि से द्रुपद तो चकित हो गया, और याजमुनि की प्रशंसा करने लगा।

"महाराज द्रुपद, यह तुम्हारा तेजस्वी पुत्र है। इसका नाम धृष्टद्युम्न। यह द्रोण का सिर उतारेगा इसमें जरा भी शंका मत करना।"

द्रुपद ने याजमुनि को नमस्कार किया और घोड़े पर से उतर कर अपने पास आकर खड़े धृष्टद्युम्न के शरीर पर हाथ फेर कर कहा—'बेटा, तुमने हमें भाग्यशाली बना दिया।"

"लेकिन द्रुपद, इस वेदी में तेरे लिए एक पुत्री भी तैयार है।" याजमुनि ने कहा।

"आपका कहना मैं अच्छी तरह नहीं समझा।"

"तुझे द्रोण का वध करने वाला पुत्र तो मिला; लेकिन उसकी तैयारी करने वाला भी तो कोई चाहिये न ?"

"जी।"

"इसके लिए मैं तुझे एक पुत्री देता हूँ।"

इतना कहते ही याजमुनि ने दूसरा नारियल यज्ञ में होम दिया। एक सुन्दर स्त्री यज्ञ को वेदी में से बाहर निकली और रानी के पास जाकर खड़ी हो गयी।

"द्रुपद, इसके शरीर का रंग श्याम है इसलिए इसका नाम कृष्णा रखना।"

"मुनि महाराज, आपने मुझपर खास कृपा करके यह पुत्री दी है।" रानी ने कहा।

"यह पुत्री ऐसे समय में पैदा होनी ही चाहिए थी। तुम और मैं सब इन दोनों के पैदा होने में केवल निमित्तमात्र हैं। राजन्, एक बात बताऊँ?

"देखो, अपने दिल की एक बात कहे देता हूँ। यह धृष्टद्युम्न और यह कृष्णा तुम्हारा नाम अमर कर देंगे। कुछ समय बाद इस देश में एक दारुण युद्ध होने वाला है, उसके चिह्न मुझे दिखायी देने लगे हैं। नहीं तो ऐसे यज्ञ कराने का कारण न तो मुझे सूझ सकता है और न गुरु-पुत्र से वैर लेने का तुझे सूझ सकता है। लेकिन राजन्, न जाने कैसे मैं, तुम और ये सब लोग किसी बड़ी शक्ति के हाथ में एक यन्त्र की तरह पड़े हैं और न जाने किस उद्देश्य के लिये उखाड़-पछाड़ किया करते हैं। राजन्, यज्ञ की यह अग्नि लाखों मनुष्यों के रक्त की प्यासी है ऐसा मुझे दिखायी देता है।" कहते-कहते याज अचानक अटक गये।

"महाराज, जैसा आप कहते हैं वैसा हो भी सकता है। लेकिन यह तो जगत् का क्रम है। इसलिए हम क्षत्रियों को इसका जरा भी दुःख नहीं होता।" द्रुपद ने धीरज से उत्तर दिया।

"मुनि महाराज, मैं एक वस्तु चाहती हूँ।" रानी ने कहा।

"बोलिए रानीजी!"

"ये दोनों पुत्र और पुत्री मुझे अपनी मां समझें ऐसी आप कृपा करें

और इस लड़की को तो कभी मैं अपने से जुदा नहीं करूँगी।" रानी ने कहा।

"तथास्तु। लेकिन इस लड़की के भाल से ऐसा मालूम होता है कि यह किसी सम्राट की रानी होगी।"

"यह तो मेरे बड़े अहोभाग्य हैं।" द्रुपद ने गर्व से कहा।

"द्रुपद, अब यह यज्ञ पूर्ण हुआ इसलिए अब मैं तो जाता हूँ। तेरा और तेरे पुत्रों का कल्याण हो।"

इतना कहकर याजमुनि चले गये। धृष्टद्युम्न और कृष्णा को लेकर राजा और रानी महल में चले गये और पांचाल के योद्धा जयघोष करने लगे।

: ३ :

पांच भाइयों की पत्नी

"मां, ये सब राजा-महाराजा पिताजी को जो धमका रहे हैं इससे मैं बिलकुल नहीं डरती; और ये सब क्षत्रिय लोग अपने पराक्रम से मुझे वरने वाले महापुरुष को जो तकलीफें दे रहे हैं इससे भी मेरा दिल बिलकुल नहीं दुखता, लेकिन तुम्हारी आंखों से जो यह धारा बह रही है वह मुझसे नहीं देखी जाती।" अपनी मां की आंखों के आंसू पोंछती हुई द्रौपदी बोली।

"बेटी कृष्णा, तू चाहे जितनी बड़ी होगयी हो और समझदार भी होगयी हो, लेकिन मेरे सामने तो बालक ही है। लड़की जब छोटी होती है तो उसका लाड़-प्यार करना और उसकी शादी के बारे में इधर-उधर की बातें करना बहुत सरल होता है, लेकिन जब वह बड़ी होजाती है तब उसके योग्य वर खोजने की चिन्ता में दिल कैसे जलता रहता है इसका तुझे अनुभव नहीं हो सकता।" रानी ने अपने आंसू पोंछते हुए कहा।

"लेकिन मां, पिताजी और भैया की प्रतिज्ञा के अनुसार मेरा स्वयंवर नहीं हुआ क्या?" पांचाली ने पूछा।

"तेरे पिता की तो बात ही क्या करूं? उनकी तो मन-की-मन में ही रह गयी। उन्होंने तो तेरे लिए पाण्डुपुत्र अर्जुन की कल्पना की थी; लेकिन इतने में तो कपट से दुर्योधन द्वारा उनके जला दिये जाने के समाचार मिले।" रानी ने एक लम्बी सांस लेकर कहा।

"लेकिन माँ, मेरी समझ में नहीं आरहा है कि जो कुछ हुआ है इसमें बुरा क्या हुआ?"

"बुरा तो कुछ नहीं हुआ है, लेकिन राज-महल में रहनेवाली तथा अपना दूध पिलाकर सिंहों को पुष्ट करने के लिए पैदा हुई मेरी कृष्णा ब्राह्मणों के घर जाकर वेदपाठी ब्राह्मणों को जन्म देगी, यह कल्पना करते ही मेरा दिमाग सुन्न पड़ जाता है। तेरा भाई और तू जब यज्ञ में से पैदा हुए तब तुम्हारे लिए हमने क्या-क्या मनसूबे बांध रक्खे थे। लेकिन आज वे किस काम के? जो भाग्य में लिखा होता है वही होकर रहता है।"

"मां, तुम्हारा यह सोचना व्यर्थ है। जिस धनुष को बड़े-बड़े जबर्दस्त क्षत्रिय न झुका सके, जिस धनुष को झुकाते-झुकाते शिशुपाल का सिर फूट गया और जरासंध के घुटने फूट गये उसपर बाण चढ़ाने वाला किसी भिखमंगी ब्राह्मणी के पेट में रहा होगा, ऐसा मैं नहीं मान सकती। क्यों भैया, तुम्हारी क्या राय है?"

"तुम जो कह रही हो उसे मानने की इच्छा तो हो जाती है लेकिन फिर भी वे ब्राह्मण ही दिखायी देते हैं।"

"स्वयंवर के अन्त में जब बाहर निकले तब सारे क्षत्रिय राजा युद्ध करने के लिए तैयार हो गये थे। यह तो तुमको मालूम ही है?"

"हां, तेरे भाई ने मुझे बताया था।"

"उस समय उन पांचों भाइयों में से एक ने एक बड़ा-सा पेड़ उखाड़ कर उससे सब लोगों को भगा दिया था। किसी भिखारी ब्राह्मण के ये ढङ्ग हो सकते हैं?"

"तो क्या ये ब्राह्मण नहीं हैं?" धृष्टद्युम्न बोल उठा।

"इन भाइयों की मां को किसी ने देखा है?"

"कैसी है वह ?"

"वह एक सच्ची क्षत्राणी के समान है। उसकी आंखों में खून उतरता दीखता है, उसकी वाणी में सिंहनी का आत्मगौरव दीखता है। उसकी दृढ़ता के आगे तो, चाहे जैसा वीर भी हो, नाचीज़ है।"

"तो तेरा ख़याल है कि वे ब्राह्मण नहीं हैं, क्षत्रिय हैं ?"

"मुझे तो ऐसा ही लगता है। किसी वजह से वे ब्राह्मण के वेश में रह रहे हैं और प्रकट नहीं हो रहे हैं।"

"अगर ऐसा होगा तो अभी ही थोड़ी देर में सब मालूम हो जायेगा। पिताजी ने यह जानने के लिए गुप्तचर भेज दिये हैं।" धृष्टद्युम्न ने कहा।

"बेटा, कल रात को तो खोज करने को तुझे ही भेजा था न ?"

"हां, बहन जो कहती है वह मुझे भी सच होता दीखता है। मन में कोई कहता है कि हों न हों ये ही पांचों पांडव हैं।"

"तूने जांच क्या की थी ?"

"मैंने छिपे-छिपे यह देखा कि सबसे छोटे दोनों भाई गांव में से भिक्षा लेकर आये और उन्होंने अपनी मां के सामने सब रक्खा। मां ने बहन से कहा कि 'इस भिक्षा में से एक भाग देवताओं के लिए निकाल लो। फिर सबके दो भाग करके एक भाग इस बिचले लड़के को दे दो और बाक़ी आधे में से हम सबके हिस्से करलो।"

"बिचले को आधा हिस्सा क्यों ?"

"इस बिचले का आहार और उसकी ताक़त बहुत है इसलिए।" द्रौपदी ने कहा।

"लेकिन मेरी बेटी को सुलाया कहां था ?"

"उस कुम्हार के यहां पशु बांधने की जो जगह थी उसमें सबसे छोटे भाई ने चटाई बिछाकर सबके बिछौने बिछाये। उनकी मां उन सबके सिर की तरफ और बहन उनके पैताने सोयी !" धृष्टद्युम्न ने कहा।

मेरी बेटी ! ज़मीन पर तुझे नींद कैसे आयी होगी ? तेरे पिता को अगर यह मालूम हो जाये तो उन सबको महल में ले आयें।"

"मुझे तो ऐसे समाचार मिले हैं कि भोजन करने और रहने को आज वे सब यहीं आने वाले हैं। देखो यह पिताजी का आदमी आया, इसीसे पूछें।"

"क्यों, क्या खबर लाये हो?"

"रानीजी, आपके लिए एक समाचार लाया हूं; लेकिन..."

"लेकिन क्या? बताओ क्या समाचार है?"

"हमारी यह बेटी कृष्णा उन पांचों भाइयों से शादी करे—ऐसा उन लोगों का विचार है।"

"तेरी जीभ कट कर गिर जाये, निर्लज्ज कहीं का! कहते शर्म नहीं आती। मेरी बेटी के पांच पति?"

"हां रानीजी! मैंने तो यही सुना है।"

"मैंने ऐसे कोई अपनी लड़की बेची नहीं है। ये लोग ब्राह्मण भी नहीं दीखते। कोई जंगली आदमी मालूम होते हैं। नहीं तो भला ऐसी बात बोलते। एक आदमी के कई स्त्रियां होते तो सुना है; लेकिन एक स्त्री के कई पति होते नहीं सुना। चूल्हे में जाये तुम्हारा यह स्वयंवर और साथ ही ये ब्राह्मण भी। दुनिया से धरम उठ गया मालूम होता है।"

"मां, इतनी उतावली मत होओ।"

"उतावली न होऊं तो करूं क्या? तू तो एक और पति तेरे पांच। इतने महीनों पेट में रखा तो क्या घर में नहीं रख सकूंगी।"

"मां, इतनी उतावली मत होओ।"

"ले, नहीं होती उतावली! लेकिन पांच पति तो वेश्या के होते हैं। शास्त्र में ऐसा कहीं लिखा है?"

"लेकिन एक पुरुष और एक स्त्री का विवाह यह शायद प्रेम की ईर्ष्या से उत्पन्न हुआ नियम है। एक स्त्री को अनेक पति और एक पुरुष को अनेक स्त्रियां यह देश और काल की परिपाटी के अनुसार व्यवहार हैं। इन व्यवहारों में जहां संयम को पहला स्थान होता है वह धर्म, और जहां पशुता को पहला स्थान मिले वह अधर्म है। इस संयम को ध्यान में रख

कर ही जुदे-जुदे लोग अगर अपने-अपने व्यवहार बनायें इसमें कोई खराबी नहीं है।" द्रौपदी ने कहा।

"तो यों कह न कि तुझे ही पांच पति चाहिए। अगर तेरी ही ऐसी मरजी हो तो मैं बीच में बुरी क्यों बनूं?" रानी ने चिढ़कर कहा।

"यह विवाह का जो बन्धन आज है वह भी तो हम लोगों में हाल ही में दाखिल हुआ है। कुछ लोगों में तो यही रिवाज है कि स्त्री को एक सन्तान होने तक वह एक पुरुष के साथ रहती है और बादमें वे अलग हो जाते हैं।" द्रौपदी ने कहा।

"जिस स्त्री को अपनी मर्यादा से बाहर चला जाना हो वही ऐसा पसन्द कर सकती है।"

"मां, हमेशा ऐसे ही होता है, यह तो नहीं मान लेना चाहिए। गुरुजी कहते थे कि 'एकोऽहम् बहु स्यां प्रजायेयम्।' विवाह मात्र के मूल में उस आदि पुरुष का यह मूल संकल्प है। जब पुरुष के अन्तर में इस संकल्प का धक्का लगता है तब वह बाहर दौड़ता है और स्त्री की खोज करता है।" द्रौपदी कहने लगी।

"यह सब तो मैं समझती नहीं। मेरे बाप ने मुझे शास्त्रादि नहीं पढ़ाये। मैं तो इतना ही जानती हूं कि ऐसा व्यवहार तो हल्के वर्णों में होता है। हमारा तो राजवर्ण है।"

"लेकिन मां, मुझ पर तुम क्यों चिढ़ती हो। मेरी सास कहती थीं कि उनके कुल का रिवाज ही ऐसा है। ऐसे कुल-धर्म अलग-अलग लोगों में अलग अलग तरह के होते ही हैं। इसमें हम क्या करें।"

"ऐसे वेश्या-जैसे कुल-धर्म किसी के होते होंगे, उन लोगों को कोई कहनेवाला भी है या नहीं? अब तो तू जाने और तेरे पिता जानें। उन्होंने ही यह सब गड़बड़ी की है। सीधे से अर्जुन से विवाह कर दिया होता तो सबको शांति मिलती और यह सारा बखेड़ा भी नहीं होता।"

यह बातचीत हो रही थी कि इतने में महाराज द्रुपद आये।

"क्यों क्या बातें हो रही हैं।"

"यह इसीकी बात हो रही है। तुमको यह चिन्ता कहां कि लड़की ने किसको वरण किया, कहां रही, कहां सोयी, क्या खाया-पिया ? तुम पुरुष लोग तो तलवार लटकाकर इधर-उधर घूमते रहते हो और सारी चिन्ता मुझे करनी पड़ती है।" रानी ने गुस्से में कहा।

"रानी, ऐसा मत कहो। मैं भी इसी चिन्ता में था।" द्रुपद ने शांति से उत्तर दिया।

"तो फिर मेरी बेटी को इन ब्राह्मणों को ही देने का तय कर लिया न ? और तुम्हारी लड़की के पांच पति हों इसमें भी तुम्हें कोई उज्र नहीं है न ? तुम भी, जैसा तुम्हारे कुल को शोभा दे, वैसा करो।"

"मां, तुम बहुत उतावली हो जाती हो। मानो हम सबको तो कोई अक़्ल ही नहीं है। पिताजी को ज़रा शान्ति से बैठकर बात तो करने दो।" धृष्टद्युम्न ने गरम होकर कहा।

"ले सुन, मैं तेरी चिन्ता मिटाने की दवा ले आया हूं।"

"क्या लाये ? कहिए।"

"जिस वीर पुरुष ने भरी सभा में धनुष खींचकर निशान पर बाण मारा था वह ब्राह्मण नहीं बल्कि क्षत्रिय है ?',

"ऐं ! आप क्या कहते हैं ? क्या सचमुच क्षत्रिय है ?"

"हां, वह क्षत्रिय है, इतना ही नहीं, वह स्वयं अर्जुन है और ये पांचों वीर पांडव हैं और उनकी मां स्वयं कुन्ती है।"

"कृष्णा, अन्त में तेरी ही बात सच निकली। अब मेरा कलेजा ठंडा हुआ बेटी। अन्त में तू क्षत्रिय के पास ही गयी।" रानी मानो कृतकृत्य होगयी हो। उसकी आंखों में हर्ष के आंसू आगये।

"तो अब तुम्हारी चिंता दूर होगयी न ? या कुछ बाकी रहा ?" द्रुपद ने पूछा।

"अब और कौन-सी चिंता होती ? लेकिन यह लड़का कहता है कि ये पांचों पुरुष कृष्णा से शादी करेंगे। क्या यह ठीक है ?" रानी ने पूछा।

"हां, यह बात तो ठीक है। मैंने भी जब यह सुना तो मेरे दिल में

चोट लगी; लेकिन जब स्वयं व्यास भगवान ने मुझे यह बताया कि यह तो उनका कुल-धर्म है तो मैंने इसे स्वीकार कर लिया। और महाराज युधिष्ठिर स्वयं सत्यनिष्ठ हैं, इसलिए वह जो करेंगे वह अधर्म हो ही नहीं सकता, ऐसी मेरी निष्ठा है।" द्रुपद ने कहा।

"लेकिन एक स्त्री के पांच पति ?"

"हां, पांच पति। यह उन लोगों का कुल-व्यवहार है इसलिए मैं इसमें बाधा नहीं डालना चाहता।" द्रुपद ने कहा।

"लेकिन लोक में तो मेरी लड़की की निन्दा होगी न ?"

"लेकिन मां, यह तो मुझे सम्हालना है न ? एक पतिवाली स्त्रियां कितनी संयम वाली होती हैं यह जाकर पहिले देख लो। मैं पांच भाइयों से शादी करूंगी फिर भी संयम का पालन करना तो मेरा और उनका प्रश्न है। पृषत् राजा के कुल में पैदा हुई हूं, द्रुपद जैसे पराक्रमी मेरे पिता हैं, धृष्टद्युम्न जैसे भाई की मैं बहन हूं और पाण्डवों की पत्नी बनूंगी, तब भी मेरे पतिव्रत में तुमको इतनी शंका क्यों होती है ?"

"शंका नहीं है, लेकिन लोग क्या कहेंगे ?"

"ऐसी लोक-निन्दा का कहां-कहां खयाल रखेंगे ? फिर व्यास भगवान् का विचार करें, वा कुन्ती का विचार करें, या जिन पाण्डु-पुत्रों के लिए दिन-रात तू सोचा करती थी उनका विचार करें ? -किस-किसका विचार करें ? तू तो इस विचार को छोड़ दे और आनन्द से इस प्रसंग का स्वागत कर।" द्रुपद ने कहा।

: ४ :

इन्द्रप्रस्थ की महारानी

"मामा, धिक्कार है आपकी बुद्धि को! इतनी युक्तियां आपने कीं, लेकिन पाण्डव तो दिन पर दिन ज्यादा-से-ज्यादा तेजस्वी ही होते जाते हैं।" दुर्योधन ने हाथ मलते हुए कहा।

"क्यों इन्द्रप्रस्थ में कोई खास अनुभव हुआ मालूम होता है?" शकुनि ने शांति से पूछा।

"मामा, आप तो आये नहीं थे, इसलिए आप क्या जान सकते हैं। अरे वहां तो इन भले मानसों ने मानो साक्षात् इन्द्रपुरी खड़ी कर दी। राजसूय यज्ञ में हजारों राजा-महाराजाओं के मुकटों का तेज युधिष्ठिर के चरणों को छूता था। लाखों ब्राह्मण वेदपाठ कर रहे थे, हीरे-जवाहरात का तो कोई पार ही न था। उस कृष्ण ने शिशुपाल का सिर भरी सभा में उड़ा दिया और किसी राजा ने चूं तक नहीं की। सब देखते ही रहे। मय दानव ने युधिष्ठिर का सभा-भवन ऐसा बनाया कि वरुण और कुबेर का भी सभा-भवन ऐसा न होगा। मामा, आपने यह सब देखा नहीं, इसलिए आपको क्या बताऊँ?" दुर्योधन ने कहा।

"कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जब वे स्वतः किसी चीज को देखते हैं तब उनको महसूस होता है कि उन्होंने कुछ देखा है। लेकिन मेधावी लोग, दूर रहकर सुन भर लेते हैं और प्रत्यक्ष देखने से ज्यादा ख्याल कर लेते हैं।" शकुनि ने कहा।

"और मामा, एक बात तो कहना भूल ही गया था। वह द्रुपद की छोकरी अब पाण्डवों की पटरानी बन बैठी थी। कल की वह छोकरी! धौम्य आदि मुनियों ने उसे अवभृथ स्नान कराया और चोटी खुली रख कर उसने मुनियों की पूजा की।" दुर्योधन ने कहा।

"और मामा, उस दुष्टा ने एक जगह भाई साहब का मज़ाक भी उड़ाया था।" दु:शासन ने कहा।

"कैसा मज़ाक ?"

"मय दानव ने महल में जल और स्थल की ऐसी रचना की थी कि भाई साहब को पानी की जगह जमीन दिखाई देती थी और जमीन की जगह पानी। सो एक जगह यह गिर पड़े और इनके कपड़े भीग गये।"

"तो इसमें कौन बड़ी बात हुई ?"

"यह तो कुछ नहीं पर द्रौपदी और भीमसेन जरा दूरी पर बैठे हुए थे। यह देखकर वे हंसे; और द्रौपदी बोली कि "अन्धे के तो अन्धे ही होते हैं।" दुःशासन ने कहा।

"इतना-सा ही कहा ? यह तो कुछ नहीं कहा। वह तो अभी और कहेगी। जब तुम जैसे सुननेवाले मौजूद हों तो वह क्यों न कहे ?" शकुनि ने ताना दिया।

"मामा, अब तो हमसे सहन नहीं होता। मुझे तो ऐसा गुस्सा आ रहा था कि उसकी चोटी पकड़ कर वहीं-का-वहीं पछाड़ डालूं।" दुःशासन ने कहा।

"तो पछाड़ देता न ? बोलना आसान है, करना नहीं। करने में अभी देर लगेगी।" शकुनि ने कहा।

"जब तय कर लूंगा तो पछाड़ भी डालूंगा। तब एक घड़ी की भी देर न लगेगी।"

"अब तुम बकवास बन्द करो दुःशासन। मामा, अब तो पाण्डवों की कुछ-न-कुछ पक्की व्यवस्था करनी चाहिए। इसलिए अब तो कोई और ही रास्ता बताइए।" दुर्योधन ने कहा।

"दुनिया में रास्तों की कमी नहीं है। ईश्वर ने मनुष्य की जरा-सी खोपड़ी में ऐसी कोई चीज़ रख दी है कि वहां किसी भी काम के लिए रास्ते तो मिलते ही रहते हैं। सिर्फ उन रास्तों पर चलनेवालों की ही दुनिया में कमी है।" शकुनि ने कहा।

"ऐसा मत कहिए मामा। आपके बताये रास्ते पर मैं कब नहीं चला ? आपके कहने से ही तो मैंने भीमसेन को ज़हर दिया और गंगा में डुबा

दिया था, आपके कहने से ही तो उनको लाख के महल में टिकाया और आग लगायी। लेकिन न जाने कैसे वे इन सब में से बच निकलते हैं," दुर्योधन ने कहा।

"यही बात है न ?"

"संयोग तो ऐसा हुआ था कि वह द्रुपद की छोकरी हमारे कर्ण को मिलती; लेकिन अन्तिम घड़ी में उस छोकरीने सब गुड़ गोबर कर दिया," दुर्योधन ने कहा।

"मामा, इस बार तो कोई ऐसी युक्ति खोज निकालो कि जिससे ये पांडव और वह छोकरी सब एक बार चीं बोल जायं और द्रौपदी को भी मालूम हो जाय कि पाण्डवों से उसने शादी करके कैसी भूल की," कर्ण ने कहा।

"युक्तियां तो तैयार पड़ी हैं। कोई उन पर अमल करने वाला चाहिए।"

"यह रहा अमल करने वाला," छाती तानकर दुर्योधन सामने आया।

"तुझ से यह नहीं हो सकता।"

"होगा क्यों नहीं ?"

"धृतराष्ट्र के सामने तेरी कहाँ चलती है ? वहाँ तो पांडवों ने अपना स्थायी वकील नियुक्त कर रक्खा है। इसलिए तुम्हारे हाथ-पैर पछाड़ने व्यर्थ हैं," शकुनि ने कहा।

"विदुर को वहां से किसी तरह हटाया जाय।"

"राजन्, मुझे तो लगता है कि ये युक्ति-प्रयुक्तियां एक ओर रखकर पांडवों से दो-दो हाथ कर लें। एक ही दिन में सब तय हो जायगा," कर्ण बोला।

"लड़ना हो तो भीमसेन से तो मैं निपट लूंगा।" दुःशासन ने कहा।

"भाई, यों उतावले मत बनो। लड़ने से हमारा काम नहीं बनने का। मामा को बोलने दो," दुर्योधन ने कहा।

"तो सुनो ! देखो युधिष्ठिर को जुआ खेलने का बड़ा शौक़ है। सच

है न ?" शकुनि ने कहना शुरू किया।

"बहुत ज्यादा। सत्य के बाद दूसरा नम्बर जुए का ही है," दुर्योधन ने कहा।

"तो हम उससे जुआ खेलें," शकुनि ने कहा।

"लेकिन वह तो इनकार कर देंगे। वह जानते हैं कि जुआ बहुत बुरी चीज़ है।" कर्ण ने कहा।

"यह सब ठीक है, लेकिन फिर भी शौक़ बहुत बुरा होता है। इसलिए वह इनकार नहीं करेंगे। हमें धृतराष्ट्र से उन्हें कहलाना पड़ेगा बस," शकुनि ने कहा।

"इतना तो पिताजी से कहला देंगे, और पिताजी की आज्ञा का युधिष्ठिर विरोध भी नहीं करेंगे ऐसी मुझे आशा है," दुर्योधन ने कहा।

"लेकिन इस जुए से होगा क्या ?" कर्ण ने पूछा।

"मामा को तो कह लेने दो। कहो मामा, फिर आगे ?" दुर्योधन बीच में बोला।

"युधिष्ठिर के एक बार जुआ खेलना स्वीकार कर लेने पर फिर वह और मैं बाज़ी लगाकर खेलेंगे," शकुनि ने कहा।

"मामा, यह तो बहुत ही ठीक होगा," दुर्योधन खुश होगया।

"मामा को बहुत दूर की सूझती है। न जाने इनके दिमाग़ में क्या-क्या भरा है," दुःशासन बोला।

"फिर खेल-खेल में मैं युधिष्ठिर से उसका राज-पाट, धन-दौलत, हीरे-जवाहरात, भाई वग़ैरा सब जीत लूंगा," शकुनि ने अपनी योजना सामने रक्खी।

"यह तो बहुत ही बढ़िया रहेगा।"

"लेकिन इस सारी बात का आधार धृतराष्ट्र के ऊपर है। अभी तो ऐसा करो कि किसी तरह धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को खेलने को बुलायें," शकुनि ने कहा।

"लेकिन वहां विदुर जो बैठा है। वह इस गाड़ी को पटरी पर नहीं

बैठने देगा," कर्ण ने कहा ।

"कोई ऐसी युक्ति निकालो कि धृतराष्ट्र विदुर को ही बुलाने भेजें," शकुनि ने कहा ।

"हां, यही ठीक है । आप लोग यह क्यों समझ लेते हैं कि पिताजी इस काम के लिए इनकार कर देंगे । मेरी उन्नति हो यह उन्हें क्या अच्छा नहीं लगता है ? जरूर लगता है । पर उन्हें जरा लोक-लाज का भी ख़याल करना पड़ता है; इससे लोग ऐसा समझ लेते हैं," दुर्योधन ने कहा ।

"लेकिन मान लो कि तुम्हारी कल्पना के अनुसार पाण्डव सब कुछ हार गये । मगर उसके बाद क्या होगा ?" कर्ण ने पूछा ।

"उसके बाद का विचार बाद में करेंगे, पहले से सब ठीक-ठीक नहीं हो सकता । ऐसे मामलों में भाग्य अपने क्या खेल खेलता है यह भी तो देखना होता है। जहां तक मेरी नजर दौड़ती है वहां तक तो इस युक्ति से पांडव काफी हैरान होंगे और द्रौपदी को भी काफी मुसीबत उठानी पड़ेगी," शकुनि ने कहा ।

"मुझे यह मंजूर है ।" दुर्योधन ने कहा ।

"मुझे भी मंजूर है ।" दुःशासन ने कहा ।

"अपने को तो पहले लड़ाई मंजूर बाद में यह जुआ वगैरा," 'कर्ण ने कहा ।

"मामा, यह तो सब को मंजूर है ।"

"तो तुम लोग किसी तरह युधिष्ठिर को खेलने के लिए बुला लाओ। उसके बाद का सारा भार तुम्हारे मामा के ऊपर," शकुनि ने कहा ।

"मामा, इस समय का तीर तो बराबर है न ?" दुःशासन ने पूछा ।

"लगता तो बराबर है । फिर कोई अनचीती घटना हो जाय और खेल बिगड़ जाय तो भगवान जानें । मेरी बुद्धि तो यही कहती है कि खेल में युधिष्ठिर सब हार जावेंगे और दुर्योधन समुद्र-पर्यन्त सारी पृथ्वी का स्वामी होगा," शकुनि ने कहा ।

"मैं राजा होऊं या न होऊं, इसकी मुझे चिंता नहीं है । मैं तो

केवल यह चाहता हूं कि इन पांडवों को अच्छा मज़ा मिले। द्रौपदी ने मेरा और मेरे वृद्ध पिता का जो मज़ाक उड़ाया उसे मैं हरगिज़ सहन नहीं कर सकता। मामा, इस युक्ति में इस द्रौपदी का जरूर खयाल रखना," दुर्योधन ने कहा।

"खेल के समय मैं पास ही रहूंगा और अगर मामा को याद न रहेगा तो मैं याद दिला दूंगा," दुःशासन ने कहा।

"मामा और भूल जाय? जिस दिन मामा यह भूल जायगा उस दिन संसार में अंधेरा हो जायगा। क्यों मामा, ठीक है न?" दुर्योधन ने समाप्त किया।

: ५ :

वस्त्रहरण

हस्तिनापुर के राजमहल में लोगों की भारी भीड़ जमा थी। एक तरफ भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर आदि चित्र में चित्रित जैसे सिंहासनों पर बैठे थे। एक ओर मंत्र-मूर्छित सर्पों के समान फुंकारते हुए पाण्डव नीचा सिर किये बैठे थे। और एक ओर दुर्योधन, कर्ण, शकुनि वगैरा मानो विश्वविजय करके आये हों, इस प्रकार मूछों पर ताव दे रहे थे। विशाल भवन के बीचों-बीच द्यूत-पट के पास हाथी-दांत के पांसे इस प्रकार चुप-चाप पड़े थे मानो भरत-कुल का इतिहास लिख रहे हों। चारों ओर शांति थी, मानों सब निश्चेष्ट हों—सबके मुंह जैसे सिल गये हों। सबकी आंखें कमरे के दरवाजे की ओर लगी हुई थीं।

इतने में एक शेरनी की दहाड़ सुनायी दी—

"भारत के क्षत्रियो! अब तुम्हारा काल आगया है।"

भीष्म और द्रोण के कान खड़े हुए, दुर्योधन के कान खड़े हुए, भीम और अर्जुन के कान खड़े हुए, सारी सभा में एक कंपकपी छा गयी।

गोली के लग जाने पर जैसे घायल शेरनी भागती है वैसे ही द्रौपदी उस सभा-भवनमें दाखिल हुई। उसके लम्बे बाल उसकी पीठ पर समुद्र

की लहरों के समान लहरा रहे थे। अपनी कमर के कपड़े को नीचे सरकने से बचाने के लिए उसने उसे थमा रखा था। मुंह में उसके सांस रुकता नहीं था। उसकी आंखों में क्रोध और घबराहट थी।

द्रौपदी के पीछे दुःशासन दृढ़ता से पैर बढ़ाये आ रहा था।

"भारत के क्षत्रियो! अब तुम्हारा काल आगया है। इस सभा में भीष्म और द्रोण बैठे हैं, इस सभा में प्रतापी पाण्डव बैठे हैं; फिर भी यह पापी दुःशासन निर्लज्ज होकर मेरी चोटी पकड़ सकता है और लात मार सकता है, इसीसे मैं कहती हूं कि क्षत्रियो! अब तुम्हारा काल आ-गया है। मैं द्रुपद राजा की पुत्री; मैं धृष्टद्युम्न की बहन, मैं पाण्डवों की धर्मपत्नी; मैं भीष्म और धृतराष्ट्र की कुलवधू; अर्जुन जैसा पराक्रमी मेरी वेणी में फूल गूंथता है; जगत् के समस्त ब्राह्मणों ने मेरी इस चोटी पर अवभृथ का जल सिंचन किया, मेरे उन्हीं बालों को यह पापी दुःशासन छूता है और तुम सब क्षत्रिय बैठे-बैठे देख रहे हो, इसीसे मुझे लगता है कि इस संसार से अब क्षत्रियत्व उठ गया। तभी तो......"

"अरे चल, चल, बड़ी आयी क्षत्रियत्व वाली! आज से तू हमारी दासी है। जाओ, अब आज से हमारे अन्तःपुर में जाकर काम करो। यहां व्यर्थ की बकवास मत करो," दुःशासन ने हुक्म दिया।

"पांचालराज की पुत्री तुम्हारी दासी? महाराज पाण्डु की कुलवधू तुम्हारी दासी? दुःशासन ज़रा ज़बान सम्हालकर बोल नहीं तो तेरी जीभ के टुकड़े-टुकड़े हो जायंगे।"

"ओह! देखी पाण्डु की कुलवधू। पांच-पांच तो पति हैं और ऊपर से बनती है कुलवधू, कर्ण ने उत्तर दिया।" जुए में युधिष्ठिर तुझे हार गये हैं। इसलिए अब तू दुर्योधन की दासी हुई है। मैं सूतपुत्र को नहीं वरूंगी, ऐसे गर्वीले वचन अब यहां नहीं चलेंगे," कर्ण ने कहा।

"दुर्योधन की जूठन खाकर पलने वाले कौए! बस कर। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, पूज्य विदुर, मैं आपसे और इस सारी सभा से केवल एक यह प्रश्न पूछना चाहती हूं। धर्मको सामने रखकर उसका उत्तर दीजिएगा।

महाराजा युधिष्ठिर ने मुझे अपने स्वयं हार जाने के बाद दांव पर रक्खा या पहले ?"

सारी सभा स्तब्ध होगयी। कुरुकुल के सब धर्मशास्त्री विचारमें पड़ गये। कौरवों के अन्दर हलचल शुरू होगयी। थोड़ी देर के बाद वृद्ध पितामह खड़े हुए और जवाब दिया—"बेटी द्रौपदी तेरा प्रश्न बिलकुल वाजिब है। धर्म का तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। युधिष्ठिर महाराज सत्यवादी हैं। तुझको उन्होंने दांव पर रक्खा लेकिन उनको ऐसा करने का अधिकार था या नहीं, यह कौन तय करे ?"

इतना कहकर भीष्म बैठ गये। दूर से कर्ण और शकुनि भीष्म की ओर देखकर मुस्करा रहे थे।

इस ओर दुःशासन का धीरज खतम हो रहा था। सभा में शास्त्र की चर्चा चल जाने से फिर उसको कुछ करना नहीं रह जाता था। खड़े-खड़े वह अधीर होने लगा। यह देख दुर्योधन ने उसे इशारा किया और बोला—"तुम पांचों पाण्डव और द्रौपदी मेरे दास हुए हो। इसलिए अपने कपड़े उतार डालो।"

महाराज युधिष्ठिर एकदम खड़े हो गये और अपने उत्तरीय उतार डाले। तुरन्त ही भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने भी एक-एक करके अपने वस्त्र उतार डाले।

"क्यों, तू अपने कपड़े उतारती है या नहीं ?"

"मैं रजस्वला हूं, मैंने एक ही वस्त्र पहन रखा है।"

द्रौपदी यह कह ही रही थी कि इतने में "चल पापिनी, निकाल अपना कपड़ा," कहकर दुःशासन उसकी धोती खींचने लगा।

सारी सभा मानो गूंगी हो गयी थी। धर्मशास्त्रियों के मुंह न जाने कब के सिल चुके थे। पाण्डव और अगर चाहे तो अकेला भीम ही, उन सबसे निबट सकता था। लेकिन आज तो वे बिक चुके थे। पांचों पाण्डव और द्रौपदी आज अनाथ-जैसी स्थिति में थे। हाथी के समान बलशाली दुःशासन चीर खींचने लगा और कमल के समान कोमल हाथों से द्रौपदी

अपने वस्त्र को किसी तरह सम्हालने का प्रयत्न कर रही थी।

"हे प्रभु ! हे परमात्मा ! सारे संसार की स्त्रियों की लाज आज तेरे हाथ में है। तू अनाथों का नाथ है। मेरा बल तेरी कृपा के अधीन है।"

द्रौपदी का यह आर्त्तनाद चौदह लोकों को पार करके भगवान् के पास पहुंचा।

कहां तो द्रौपदी का छोटा-सा कोमल हाथ और कहां हज़ार हाथियों के बलवाले दुःशासन का ज़ोर। लेकिन परमेश्वर के सामने हमारी बला-बल की कसौटियां झूठी साबित होती हैं। द्रौपदी का चीर खींचने में दुःशासन ने इतना ज़ोर लगाया कि बाद में वह खुद ही ढीला होगया। उसके हाथों में शक्ति ही न रह गयी। आंखों के सामने अंधेरा छा गया। और द्रौपदी का वस्त्र तो जैसा था वैसा ही रहा।

ज़रा-से मालूम होनेवाले अन्तर्बल के सामने हजार हाथियों के समान बलशाली दुःशासन एकदम निर्बल पड़ गया। मानों उसकी बाहुओं में जोर ही न हो। आंखों के सामने अन्धेरा आजाने से वह बैठ गया।

"क्यों दुःशासन बैठ क्यों गया ?" दुर्योधन ने पुकारा।

"मैं बहुत प्रयत्न करता हूँ, लेकिन न जाने क्यों मेरा हाथ उठता ही नहीं। इसका यह कपड़ा खींचता हूँ और खूब जोर भी लगाता हूं, लेकिन वह खिंचता ही नहीं है।"

"ठीक तरह से सामने देखकर खींच; जरा हिम्मत कर, ऐसे ही क्या हार मान रहा है ?"

"सामने देखता हूँ तो आंखें चौंधियाने लगती हैं। दिखायी ही नहीं देता," दुःशासन ने एकदम शिथिल होकर कहा।

शकुनि बोल उठा—"मालूम होता है, इसने कोई जादू कर दिया है। अरे, ज़ोर लगाकर खींच। अपने आप खिंच जायगा।"

"लेकिन मेरे हाथों में तो जोर ही नहीं रहा।"

"जोर क्या नहीं ? तू घबरा गया मालूम होता है," दुर्योधन ने कहा। इस प्रकार आपस में यह गड़बड़ हो ही रही थी कि इतने में दुर्योधन

का छोटा भाई विकर्ण खड़ा होकर बोलने लगा—

"यहां पर इकट्ठे हुए क्षत्रियो, सुनो ! यह दुःशासन एक हजार हाथियों के बलवाला माना जाता है, लेकिन फिर भी द्रौपदी का जरा-सा कपड़ा नहीं खींच सका। यह आप देख रहे हैं। यह चाण्डाल चौकड़ी इसे चाहे जितना उत्साहित करे, लेकिन इसका आंतरिक बल समाप्त होगया है। इसका कारण आप नहीं जानते; लेकिन मैं तो जानता हूँ। द्रौपदी के पक्ष में सत्य है और उसी की उसे गरमी है, उसी सत्य के बल पर इतनी बड़ी सभा के सामने वह खड़ी है। उसके सामने देखने की भी कोई हिम्मत नहीं कर सकता है। दुर्योधन और दुःशासन मेरे बड़े भाई हैं। शकुनि मेरे मामा हैं। लेकिन फिर भी मैं कहता हूँ कि हमने पाण्डवों को कपट से जीता है। यह कपट की जीत हमें कभी हज़म नहीं होगी। यह बात निश्चित है। अभी भी अगर कौरवों को इस पाप से बचना हो तो सब द्रौपदी से क्षमा मांगें, पाण्डवों को प्रसन्न करें और उनके पास से जो कुछ लिया है वह सब वापस कर दें।"

इतना कहकर विकर्ण बैठ गया। यह सुनकर कर्ण से चुप न रहा गया। वह बोला—"देखो न, यह एक और सत्य का अवतार पैदा हुआ है। दुर्योधन ! मुझे तो तुम्हारा यह भाई बिल्कुल नादान मालूम होता है। अगर द्रौपदी के पक्ष में सत्य होता तो युधिष्ठिर हारते ही क्यों ?"

"नादान तो है ही। !कौन मानता है इसके कहने को ?" दुर्योधन ने कहा।

"आपके लिए मैं नादान हो सकता हूं। लेकिन आप सब यहां बैठे हैं और द्रौपदी का बाल भी बांका नहीं कर सके, यही मेरे कहने को सिद्ध करता है कि द्रौपदी के पक्ष में सत्य है। अगर द्रौपदी चाहे तो आज वह सारी सभा और सारे संसार को जला कर भस्म कर सकती है। लेकिन उसका आत्मबल लोक-कल्याण के लिए है, इसलिए वह आप सबको अपनी भूल समझने का मौका देती है। इस मौके का फायदा उठाओगे तो सबका भला होगा। नहीं तो सबका विनाश होने ही वाला है। अब

भी समय है। समय रहते अपनी भूल सुधार लोगे तो लाभ ही है," इतना कहकर विकर्ण चुप हो गया।

विकर्ण ने मानो कुछ कहा ही नहीं, इस तरह उसकी उपेक्षा करते हुए दुर्योधन ने अपनी जांघ खोलकर द्रौपदी से कहा—"द्रौपदी, आ जा, तू तो मेरे पास यहां बैठने योग्य है।"

सारी सभा ने मारे शर्म के अपना सिर नीचा कर लिया। पाण्डवों के अन्तर में एक सागर लहरें मारने लगा; पर क्या करते? लेकिन भीम से न रहा गया। उसने वहीं प्रतिज्ञा की कि 'इस दुःशासन ने द्रौपदी की चोटी पकड़कर घसीटा है इसलिए युद्ध में दुःशासन को मारकर उसके खून से द्रौपदी की चोटी न बांधूं; और इस दुर्योधन ने निर्लज्ज होकर द्रौपदी को अपनी जांघ पर बैठने को कहा, अगर इसी जांघ को मैं अपनी गदा से चूर-चूर न करूं तो मैं पाण्डु-पुत्र नहीं।"

इसी बीच महाराज धृतराष्ट्र और गांधारी सभा में आये। इस द्यूत-सभा की और पाण्डवों के हारने की बात उन तक पहुंच गयी थी। दिल में इसकी उन दोनों को कुछ खुशी भी हुई थी। लेकिन जब द्रौपदी का वस्त्र खींचने और उसके खींचते-खींचते दुःशासन घबरा गया और द्रौपदी अलग खड़ी रही, यह बात सुनी तो वे भी घबरा गये।

यह बात सुनते ही गांधारी ने धृतराष्ट्र से कहा:—

"मैंने तो आपसे कभी का कह दिया था कि आपका यह दुर्योधन कुलांगार है। आप तो निर्बल हैं, इसी से दुर्योधन का कहा करते रहते हैं। सच बात तो यह है कि आपको दुर्योधन की दुष्टता अच्छी लगती है। अभी भी अगर कुल की रक्षा करनी है तो द्रौपदी को राजी करलो। नहीं तो अगर वह कोपेगी तो यहां हम में से कोई भी जिन्दा न रह सकेगा।"

जैसे ही धृतराष्ट्र और गांधारी सभा में आये, शकुनि तो पलायन कर गया और कर्ण एक कोने में दुबक गया।

धृतराष्ट्र बोले—"बेटी द्रौपदी, कहां हो तुम? आओ मेरे पास आओ।" द्रौपदी को अपने पास बिठलाकर धृतराष्ट्र ने उसकी चोटी ठीक

की। उसकी पीठ पर हाथ फेरते-फेरते वह बोले—

"बेटी द्रौपदी शांत होओ। इन मूर्ख छोकरों ने तुझे बहुत दुःख दिया। इसके बदले में मैं तुझे एक वर देता हूं। बेटी, जो इच्छा हो वह मांग ले और अपने क्रोध को शान्त कर।"

द्रौपदी ने कहा—

"पूज्य काका, आप प्रसन्न हों तो मैं यही वर मांगती हूं कि महाराज युधिष्ठिर आपके पुत्रों के दास हुए हैं सो वे दासत्व से मुक्त हों और जैसे पहले थे वैसे ही स्वतन्त्र हो जायं।"

"तथास्तु।" धृतराष्ट्र ने कहा। "तेरी इस विवेक भरी मांग से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। इस ल . .क दूसरा वर और मांग ले।" धृतराष्ट्र बोले।

"तो महाराज युधिष्ठिर के बाद अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव भी उस दासत्व से मुक्त हों और द्यूत में महाराज युधिष्ठिर जो धन और राज्य हार गये हों वह उन्हें सारा वापस मिले।"

"तथास्तु।" धृतराष्ट्र ने कहा, "बेटी, बस जाओ और शांत होओ।" धृतराष्ट्र ने द्रौपदी का सिर सूंघा और पांडवों के साथ द्रौपदी को भली प्रकार विदा किया।

× ×

लेकिन दुर्योधन से भला यह सहा जा सकता था? वह तो अपने हाथ मलने और धृतराष्ट्र को भला बुरा कहने लगा। कैसी बड़ी मिहनत से पाण्डवों को चंगुल में फांसा था! और सारी मिहनत इस बूढ़े ने बेकार कर दी।

"मैंने तो पहले ही कहा था कि इस अंधे राजा को तुम्हें अपने कब्जे में रखना चाहिए," शकुनि ने कहा।

"न जाने कौन जाकर उनको खबर दे आया। इन्होंने तो सारा खेल ही बिगाड़ दिया," दुर्योधन बोला।

"लेकिन एक रास्ता है। महाराज धृतराष्ट्र कहते थे कि जुआ खेलना

हो तो भले ही तुम लोग खेलो, लेकिन इस हद तक बात का बतंगड़ मत बनाया करो,'' दुःशासन ने कहा।

''ऐसा कहा है क्या? तब तो बहुत ठीक। चलो, एक बार पाण्डवों को फिर खेलने को बुलायेंगे, और हार-जीत में बहुत ज्यादा बात नहीं रक्खेंगे,'' शकुनि ने कहा।

'तो फिर इस खेल में क्या मजा आयेगा?'' दुःशासन ने कहा।

''जो हार जाय उसे बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास! इस अज्ञातवास में अगर कभी पहचाने जायं तो फिर बारह वर्ष का वनवास—यही इस बार खेल की शर्त रक्खेंगे,'' शकुनि ने कहा।

''वनवास में क्या रक्खा है? यह तो बिलकुल सरल बात है,'' दुःशासन ने कहा।

''यह बात नहीं है। पाण्डवों के वनवास के दर्मियान हम लोग राज्य में ऐसे जम जायंगे कि उनके आने पर कहीं भी उनको ठिकाना न मिले। और बारह वर्ष जंगल में भटकने के बाद क्या वे ज़िन्दा वापस आने वाले हैं? तब तक तो उनका खात्मा हो जायगा।''

''मामा का हिसाब तो ठीक है। चलो तो फिर युधिष्ठिर को एक बार खेलने के लिए बुलायें।''

''लेकिन मामा, देखना कहीं इस बार सब कौरवों को बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास न भुगतना पड़े,'' दुःशासन ने चुटकी ली।

''तो फिर शकुनि मामा कैसे? मैं तो उन पांचों को वन में भेजूंगा और उनके साथ ही वह तेरी आंखों को चौंधिया देने वाली पांच पति की पत्नी को भी वल्कल पहनाऊंगा। बड़ी पांचाल की पुत्री बनती है। देखता हूं कैसे वल्कल नहीं पहनती है?''

''मामा, सारा आधार आपके ही ऊपर है, इसलिए जरा ध्यान रखकर ही खेलना,'' दुर्योधन ने कहा।

: ६ :

अहं प्रति......?

"देवी पांचाली, क्या कर रही हो ?" पर्णकुटी के दरवाजे में घुसते हुए युधिष्ठिर ने पूछा ।

"यह भीलनी थोड़ा-सा कोदो और धान दे गयी है, उसे साफ कर रही हूं," द्रौपदी ने जवाब दिया ।

"लेकिन तुम्हारा मुंह सूज क्यों गया है ? कल नींद नहीं आयी थी क्या ?" युधिष्ठिर ने पास आकर पूछा ।

"नींद क्यों न आयेगी ? वल्कलों की यह राजसी पोशाक, पृथ्वीमाता की गोद में सोना, सारी रात गीदड़ों का मधुर सङ्गीत सुनना और बारह वर्ष अनायास ही लगातार मिलने वाले इस सुख और ऐश्वर्य के कारण मन की असाधारण शांति; ऐसी नींद तो जब मैं कुंवारी थी तब पांचाल के राजमहलों में भी नहीं आती थी ।" द्रौपदी ने कोदों को फटकते हुए कहा ।

युधिष्ठिर पर्णकुटी के चबूतरे पर बैठ गये और गहरे विचार में डूब गये ।

"क्यों, चुप क्यों हो गये ?" द्रौपदी ने उनके सामने देखकर पूछा। "जहां आप देख रहे हो वहां कुत्ते का मल पड़ा है । कल नील गायों ने आकर इस पर्णकुटी के दरवाजों को तोड़ डाला है । नकुल और सहदेव ने आपके लिए जो चबूतरा बनाया है, वहां अब नेवले आराम करने लगे हैं । युधिष्ठिर महाराज, बोलते क्यों नहीं ? शरीर से तो आप स्वस्थ हैं न ?" द्रौपदी ने पूछा ।

"हां ।"

"धूप में से आने के कारण सिर तो नहीं दुखने लगा ? लो जरा यह पानी छींट लो ।" द्रौपदी ने यह कहते हुए ठण्डे पानी से भरा एक मिट्टी

का बर्तन युधिष्ठिर को दिया। लेकिन युधिष्ठिर उसे बराबर पकड़ न सके और वह गिर कर टूट गया।

"कोई बात नहीं। इतने दिन यह टिक गया इसी का मुझे आश्चर्य हो रहा था। मैंने तो भीलनी से कहा था कि वह हमें व्यर्थ ही दे रही है। हमारे यहां टिकेगा नहीं। लेकिन वह न मानी। खैर, जरा ठहरो। मैं यह वल्कल भिगोकर लाती हूँ और आपके सिर पर रखती हूँ।"

"पांचाली, इसकी कोई जरूरत नहीं है। मेरा सिर नहीं दुख रहा है," युधिष्ठिर ने कहा।

"तो फिर बोलते क्यों नहीं ?" द्रौपदी ने पूछा।

"क्या बोलूं? तुम जैसी सुकोमल राजकुमारी को मेरे कारण इतना कष्ट उठाना पड़ता है, जब इसका विचार करता हूँ तो मैं असमंजस में पड़ जाता हूं और आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है," युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर, क्या सच कहते हैं ? मेरी बात तो जाने दो। आपसे शादी होने पर उस कुम्हार के यहां उसके ढोर बांधने के घर में जब मैं सबके पैताने सोयी थी उसी दिन मेरे लिए तो मंगलाचरण हुआ था। बीच में दो दिन खपरैल की छत के नीचे सोने का सौभाग्य भी मिला था। न जाने वह किस पुण्य का प्रताप था। लेकिन मेरी तो बात-ही नहीं है। पर इन भीम और अर्जुन के बारे में भी कभी विचार करते हो ? इन माद्री माता के पुत्रों का भी विचार आपको आता है ?" द्रौपदी को जोश चढ़ा।

"तुमको क्या लगता है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि आपको इन सबका कोई खयाल नहीं है। ये भीम और अर्जुन जैसे भाई तो इन्द्र को भी मिलना दुर्लभ हैं। इन्हीं दोनों भाइयों के पराक्रम के कारण ही आपने राजसूय यज्ञ किया, और देश-देशांतर के राजाओं ने आपके चरणों में सिर नवाया। ऐसे भाइयों को आपके कारण अब वल्कल पहनना पड़ता है, जो अपने धनुष की टंकार-मात्र से अक्षौहिणी सेना का नाश कर सकता है उस अर्जुन को एक सेर अनाज की खातिर जङ्गल छानना पड़ता है, वट-जैसे बड़े-बड़े वृक्षों को

अपने दोनों हाथों से पकड़कर उखाड़ने वाले भीमसेन को आपके सोने के लिए घास छीलकर जमीन साफ करनी पड़ती है। अगर इन सबका आपको जरा भी विचार आता हो तो हमारी यह दशा नहीं हो सकती।" द्रौपदी की आंखों में क्रोध की लाली दिखाई देने लगी।

"देवि, तुम्हें मेरे दिल का पता नहीं है।"

"मुझे सब पता है। पांचाल की पुत्री और धृष्टद्युम्न की बहन एकदम मूर्ख नहीं है। यह नकुल और सहदेव जैसी जोड़ी सारे संसार में मिलना कठिन है। इन भाइयों के ललाट में राज-सिंहासन लिखा है, लेकिन न जाने क्यों आज ये इधर-उधर लेट-लाट कर अपनी रातें बिता लेते हैं और दिन-भर जङ्गलों में भटकते रहते हैं," द्रौपदी ने कहा।

"पांचाली, क्या तुम समझती हो कि मैं यह सब कुछ देखता ही नहीं हूं?" युधिष्ठिर धीरे से बोले, जैसे उनके दिल में एक टीस-सी उठी हो।

"तुम्हारी चमड़े की आंखें देखती होंगी, लेकिन हृदय की आंखें यह नहीं देख सकतीं। बुरा मत मानना; तुम्हीं ने मुझे बोलने को कहा है, इसीलिए बोलती हूं। तुम्हें कहने का मुझे अधिकार है, इसीसे कहती हूं। आज मेरा कलेजा मेरे हाथ में नहीं रहा, इसीसे ऐसा कह रही हूं। अगर सचमुच आप यह सब देखते हैं तो अर्जुन और भीम से बराबर सुलह, शांति और क्षमा की बातें क्यों करते हैं, बोलिये?" द्रौपदी ने कहा।

"शान्ति और क्षमा ही तो सच्ची वस्तु है, मेरी ऐसी दृढ़ मान्यता है, इसीलिए यह कहता हूं," युधिष्ठिर ने उत्तर दिया।

"अभी भी शांति और क्षमा! अभी भी? कपट से हराकर हमारे ये हाल जिन्होंने किये उनको फिर क्षमा! इस जंगल में भी हमें सुख से नहीं रहने देनेवाले उस दुर्योधन को फिर क्षमा! महाराज युधिष्ठिर, यह कौन बोल रहा है?"

"युधिष्ठिर बोल रहा है। पांचाली के क्रोधित होने पर भी क्षमा की बातें सिवा युधिष्ठिर के और कर कौन सकता है?"

"और ऐसा निष्ठुर दूसरा हो भी कौन सकता है? अपनी स्त्री को

जो सरे-आम बेच देता है ऐसा वीर पति और हो कौन सकता है? युधिष्ठिर, कौरवों ने यह वल्कल तो हमें पहना दिये, लेकिन अब फिर यहां आ-आकर हमें वे तकलीफ क्यों देते हैं?" द्रौपदी ने कहा।

"सांप और बिच्छू काटें नहीं तो और क्या करें? यह तो उनका स्वभाव ही है।"

"तो इन सांप और बिच्छुओं को मार क्यों नहीं डालते? उनको मारते हुए तुम्हारा कलेजा कांपता हो तो दूर हट जाइये। लेकिन आप तो इन भीम और अर्जुन को मारने से रोकते हैं।" द्रौपदी मानो वाक्-युद्ध के लिए तैयार होकर बैठ गई।

"मुझे ऐसा लगता है कि उनको इस प्रकार मारने से हमें सुख नहीं मिलेगा। इसलिए मैं ऐसा कहता हूं,' युधिष्ठिर ने शांति से जवाब दिया।

"तो किस प्रकार सुख प्राप्त करना चाहते हो?"

"उन्हें समझा-बुझाकर।"

"वे समझ जायेंगे, ऐसा आप मानते हैं?"

"अगर हम लोग सच्चे हृदय से समझायेंगे तो वे जरूर समझेंगे। और अगर नहीं समझेंगे तो कल को हमें जो करना होगा, वह होगा।"

"तुम्हारी ये बातें मेरे गले नहीं उतरतीं। इतना-इतना सहने के बाद भी तुम क्यों इस बात को पकड़े बैठे हो, यह मेरी समझ में नहीं आता। इसी जंगल में दुर्वासा मुनि और उनके हजारों शिष्यों को भेजकर दुर्योधन ने हमें शाप से मरवा डालने का यत्न किया था, वह प्रसंग याद नहीं आता? भगवान ने उस दिन हमारी लाज न रखी होती तो, इसी जंगल में दुर्योधन का बहनोई और सिंधु देश का राजा जयद्रथ मुझपर क्रूर दृष्टि रखकर मुझे उठा ले गया था। यह आपको याद आता है? न जाने क्या बात है जिससे ये कौरव तो मुझसे मानो खार खाये बैठे हैं। और युधिष्ठिर, यह चोटी देखते हैं? भरी सभा में दुःशासन ने इसका अपमान किया था और मेरे पति केवल देखते ही रहे! यह याद आता है? वह दिन है कि आज का दिन है, मैंने चोटी नहीं बांधी है। मेरे भीम जिस

दिन उसके खून से मेरी यह वेणी बांधेंगे उसी दिन की तो मैं राह देख रही हूँ। यह सब आपको याद है न ?''

''यह याद है और इससे ज्यादा भी याद है।''

''तो फिर तुम्हारा खून खौल क्यों नहीं उठता ? तुम्हारी आंखों में खून क्यों नहीं उतर आता ?''

''यह सब याद-है। इन सब बातों को याद करने से चित्त में दुःख भी होता है कि मेरे कारण तुम सबको दुःखी होना पड़ रहा है। लेकिन साथ ही साथ यह भी अनुभव करता हूँ कि इन सबका उपाय—सच्चा उपाय—युद्ध नहीं है।''

''तो क्या क्षमा है।''

''मुझे तो ऐसा लगता है।''

''ऐसी क्षमा तो कायर की ही हो सकती है ! ऐसी क्षमा उठाईगीरों की ही हो सकती है। शूरवीर क्षत्रियों में ऐसी क्षमा नहीं होती। अगर होती है तो वह सच्चा क्षत्रिय नहीं है।'' द्रौपदी की आंखों में खून उतर आया।

''तुमको ऐसा लगता होगा।''

''एक बात पूछना चाहती हूँ। आपको अगर ऐसी क्षमा ही श्रेष्ठ और सच्चा उपाय मालूम होता हो तो फिर शस्त्रों का त्याग क्यों नहीं कर देते ? अगर ऐसी क्षमा ही आपको धारण करनी हो तो क्षत्रियों के चिह्नरूप इन शस्त्रास्त्रों का त्याग कर दें, क्षमा के अवतार रूप ऋषि-मुनियों का जीवन बिताना शुरू करें, और क्षमा की उपासना करके सुख और शांति प्राप्त करें। मैं तो ऐसी क्षमा में श्रद्धा नहीं रखती। भीम और अर्जुन का भी विश्वास नहीं है, नकुल और सहदेव का भी उसमें विश्वास नहीं है। इसलिए आप जंगल में अकेले बैठे-बैठे क्षमा की उपासना कीजिए और हमें अपने रास्ते जाने दीजिये। सब कौरवों को यमलोक पहुँचा देने के बाद हम भी फिर यहां उपासना करने आ जायेंगे और माता कुन्ती को भी ले आयेंगे,'' द्रौपदी भभक उठी।

इतने में भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव मृगया से पर्णकुटी वापस आ गये। द्रौपदी का मुंह लाल देखकर भीम ने पूछा—"पांचाली क्यों, गुस्से हो रही हो ?"

"महाराज युधिष्ठिर को और कुछ कह-सुनकर दुःखी तो नहीं किया न ?" अर्जुन ने पूछा।

"प्रिय अर्जुन, आज तो मुझसे यह दोष होगया है। मुझे क्षमा करो," द्रौपदी कुछ नरम हुई और लज्जित भी।

"हम सब लोगों का निश्चय था न कि भाई साहब को किसी प्रकार व्यर्थ में दुःखी न करना चाहिए ?" अर्जुन ने गम्भीरता से कहा।

"नहीं, मुझे इसमें कोई दुःख नहीं हुआ। द्रौपदी और तुम सबको मैंने अपनी मूर्खता से इस दुःख में ला पटका इसमें कोई शक नहीं है। इस दुःख के बारे में तुम जो कुछ भी कह दोगे वह मुझे सहन ही करना चाहिए", युधिष्ठिर ने शांति से कहा।

"अब तो हमारे दुःख का अन्त नजदीक आरहा है। ये बारह वर्ष तो बीत गये हैं। यह तेरहवां वर्ष भी इसी तरह बीत जायगा और हमारे दुःखों का अन्त आ जायगा," अर्जुन ने कहा।

"क्यों सहदेव, तुम क्या समझते हो ?"

"आसार तो ऐसे जरूर दिखाई देते हैं, लेकिन सुख आज है या तेरहवें वर्ष के अन्त में है, यह तो दोनों सुख भोग लेने के बाद ही ठीक तरह से कहा जा सकता है," सहदेव ने जवाब दिया।

"मेरी तो एक ही बात है। ये बारह वर्ष जिस प्रकार बिताये हैं उसी प्रकार तेरहवां वर्ष भी बिता डालें। महाराज युधिष्ठिर की जो प्रतिज्ञा है वह हम सबकी प्रतिज्ञा। लेकिन उसके बाद क्या ?"

"उसके बाद तो मेरी यह गदा और अर्जुन का वही गांडीव ! उसके बाद का प्रश्न ही नहीं रहता," भीम ने कहा।

"मैं भी यही कहती हूँ कि उसके बाद युद्ध···युद्ध और युद्ध !" द्रौपदी ने कहा।

"मैं कहता हूं कि उसके बाद जहां तक बन पड़े शांति-सुलह, और जहां तक हो सके धीरज और इन सबसे काम न बने तो फिर अन्तिम घड़ी में युद्ध तो है ही," युधिष्ठिर ने कहा।

"तेरह वर्ष के बाद भी समझौता? किससे समझौता करेंगे? किसलिए समझौता करेंगे? कौन समझौता करेगा?" भीम से न रहा गया।

"अभी तो एक वर्ष की देरी है। एक वर्ष तो हमें अभी अज्ञातवास करना है। इस वर्ष के बाद क्या करेंगे यह अभी से तय करना ठीक नहीं है। तेहरवां वर्ष पूरा हो जाने के बाद हमें क्या करना होगा, इसके लिए हम स्वतन्त्र हैं। समझौता करना होगा तो समझौता करें, और युद्ध करना होगा तो युद्ध करेंगे," अर्जुन ने कहा।

"फिर तो पांचाली की इस चोटी से समझौता करना होगा। फिर तो मेरी यह गदा दुःशासन की छाती के साथ और दुर्योधन की जांघ के साथ समझौता करना चाहेगी," भीम उबल रहा था।

"भाई भीमसेन, द्रौपदी, इस समय तो हम अब इस बात को यहीं खतम करें। दोपहर हो गई है सो चलकर भोजन करलें," अर्जुन ने मामला समेटा।

और सब पर्णकुटी के अन्दर गये।

: ७ :

सैरन्ध्री

पाण्डवों ने अज्ञातवास का एक वर्ष विराटनगर में बिताने का तय किया। उन्होंने अपने शस्त्रास्त्र इकट्ठे करके गांव के बाहर वाले श्मशान के एक खेजड़े के पेड़ पर टांग दिये और नगर में प्रवेश किया।

भीम ने रसोइये का वेश धारण किया और राजा की पाकशाला में रसोइये की नौकरी की। यहां उसने अपना नाम बल्लव रक्खा। अर्जुन ने स्त्री का वेष धारण किया, और रानी के महल में कुमारियों को सङ्गीत

और नृत्य सिखाने के काम में लगा। उसने अपना नाम बृहन्नला रक्खा। द्रौपदी रानी के महल में दासी बनी और उसका नाम सैरन्ध्री रक्खा गया।

विराट की रानी का एक भाई था। उसका नाम कीचक था। वह बड़ा लम्पट और दुराचारी था। द्रौपदी दासी होकर तो रही, लेकिन उसका रूप कैसे छिप सकता था? वह कीचक द्रौपदी के रूप पर मोहित हो गया और किसी भी प्रकार उसे अपनी बनाने के लिए प्रयत्न करने लगा। और विराटनगर में कीचक का इतना दबदबा था कि स्वयं राजा भी उसके मामले में कुछ नहीं कह सकते थे।

एक रोज दोपहर को भीम पाकशाला में पड़ा-पड़ा ऊंघ रहा था कि इतने में द्रौपदी आई।

"भीमसेन, भीमसेन, कैसे मजे से यहां तुम नींद ले रहे हो? कुछ पता भी है!" द्रौपदी ने पुकारा।

भीमसेन हड़बड़ाकर उठ बैठा। जंभाई लेता हुआ बोला—"द्रौपदी, इस समय भर-दुपहरी में तुम यहां कैसे?"

"मेरे पांच नाथ जब अनाथ जैसे हो गये हों तो मुझे यहां आना ही पड़ेगा न?" द्रौपदी ने कहा।

"क्यों क्या बात है! कोई तुम्हारा नाम तो ले; उसी समय नाक उड़ा दूँ। बताओ तो क्या हुआ?" भीम ने द्रौपदी को सांत्वना दी और पूछा।

"बात और क्या है! उस कीचक को तो जानते ही हो?" द्रौपदी ने कहा।

"हां, हां, उस कायर को जानता हूँ।"

"वह कीचक अब मेरे पीछे पड़ा है," द्रौपदी ने कहा।

"कीचक! उसमें इतना दम भी है! कीचक को तो मेरी एक लात ही काफी है। कीचक द्रौपदी का क्या कर सकेगा?" भीम ने कहा।

"यह तो मैं समझती हूँ। वैसे तो मैं द्रुपद की पुत्री और पांडवों की पत्नी हूँ। भरी सभा में दुःशासन की भी ताक़त न थी कि मेरा चीर खींच सके।

"यह मैं भी जानता हूँ कि द्रौपदी को आत्म-रक्षा के लिए या अपने शील की रक्षा के लिये किसी दूसरे की सहायता की जरूरत नहीं है।"

"यह तो ठीक है। हम स्त्रियों की रक्षा पुरुष क्या करेंगे! पवित्रता स्वयं अपनी रक्षा करा लेती है। नहीं कर सकती है तो वह पवित्रता नहीं है," द्रौपदी ने कहा।

"फिर तुम किस असमंजस में पड़ी हो?"

"मैं सोचती यही हूँ कि मैंने कीचक का कुछ कर दिया और हम लोग पहचान में आ गये तो?" द्रौपदी बोली।

"यह तो दो महीने पहिले या दो महीने बाद में प्रकट तो होना ही पड़ेगा न? प्रकट हो जाने के बाद भी अब यह भीम दूसरे बारह साल जंगलों में भटकनेवाला नहीं है," भीम ने कहा।

"महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा जो है?"

"इस प्रतिज्ञा का फिर वह अकेले ही पालन करेंगे," भीम ने कहा।

"यह तो सब ठीक है, लेकिन जब हमने विराटनगर में एक वर्ष बिना पहचान में आये बिताने का तय कर लिया है तो उसे पूरा करना चाहिए। इसलिए ऐसी स्थिति में कीचक का क्या करना चाहिए यह तुमसे पूछने आयी हूं," द्रौपदी ने संक्षेप में कहा।

"महाराज युधिष्ठिर की क्या राय है?" भीम ने पूछा।

"भीमसेन! इतने वर्ष होगये और अभी तक तुम उनकी राय नहीं जान सके? एक समय दुष्ट कीचक मुझे मारता-मारता राजसभा में ले गया, उस समय महाराज वहाँ उपस्थित थे," द्रौपदी ने कहा।

"तो फिर उन्होंने कीचक का गला पकड़कर वहीं-का-वहीं मसल नहीं दिया! क्या किया उन्होंने?" भीम उतावला हुआ।

"वह क्या करेंगे! उनके हथियार तो दया, क्षमा और धीरज हैं न? मुझे दूसरे न समझ सकें इस तरह सांकेतिक भाषा में कहा कि सैरन्ध्री, तुम धीरज रखो। तुम्हारी रक्षा करनेवाले पांचों गन्धर्व इसके लिए जो उचित होगा अवश्य करेंगे," द्रौपदी ने कहा।

"ऐसी बात ! तो कीचक ने तुम्हें भरी सभा में मारा !" भीम ने होंठ चबाये ।

"वह तो मारता ही न ? राजा तो कीचक से बहुत डरते हैं । क्योंकि रानी कीचक की इस लंपटता को बढ़ावा देती है," द्रौपदी ने कहा ।

"यह बात है ! तब तो यह सारा-का-सारा कुनबा ही सड़ा हुआ है," भीम ने कहा ।

"इसीलिए तो रानी मुझे बार बार कीचक के पास किसी-न-किसी काम के बहाने भेजा करती हैं । उस रोज़ आसव लेकर भेजा तो मैंने देखा कि कीचक की आंखों में काम व्याप रहा था और उसने मुझे अध-मरी कर डाला," द्रौपदी ने बताया ।

"ठीक है; तो द्रौपदी, तुम एक बात करो । ऐसा प्रकट करो कि कीचक पर तुम्हें प्रेम है और उससे एकांत में मिलने का तय करो; फिर उस जगह तुम्हारे बदले में जाऊंगा और वहीं कीचक को ख़तम कर दूंगा," भीम ने समझाया ।

"तो फिर कल का दिन ही ठीक है । मैं कीचक से कल नयी नृत्यशाला में आने के लिए कहूंगी । उस नृत्यशाला में दिन को तो लड़कियां नृत्य सीखने आती हैं, लेकिन रात में कोई नहीं होता । वहीं तुम भी आ जाना," द्रौपदी ने कहा ।

"हां, ठीक है । मैं कीचक के आने से पहले ही वहां पलंग पर जाकर सो जाऊंगा । फिर कीचक सैरन्ध्री से आलिंगन करने आयेगा और मृत्यु का आलिंगन करेगा," भीम ने अपना निश्चय बताया ।

द्रौपदी जाते जाते बोली—"लेकिन देखना, रातको कहीं यहीं ऊंघने न लग जाना, नहीं तो वह लंपट रानी के महल से मुझे पकड़कर ले ही जायगा,"

"ऐसी बात भला मैं भूल सकता हूं । हां, कभी-कभी दाल या शाक में मसाला डालना भूल जाता हूं और राजा का उलाहना भी सुनना पड़ता है । लेकिन ऐसी बातों को भीमसेन भूल जाय तो फिर हो गया न !"

× × ×

"रानी जी, भाई को तो किसी ने मार डाला,"

"क्या कहा ! भाई को ? किस राक्षस ने मारा ? मैं तो पहले ही कहती थी कि इस चुड़ैल के रास्ते मत जाओ। लेकिन वह नहीं माना। इसी चुड़ैल ने मरवाया होगा," रानी ने रोते-रोते कहा।

"ऐसा ही कुछ है। किसने मारा, किस तरह मारा, इसका कुछ पता नहीं चलता। हमने तो नृत्यशाला में जाकर देखा तो हमें मांस का बड़ा-सा पिण्ड दिखाई दिया। न तो मुंह पहचान में आता है और न हाथ पैर, न सिर ! मांस की एक गोल गेंद जैसा दीखता है," कीचक के भाई ने कहा।

"वह शंखिनी कहां गयी ?"

"वह सैरन्ध्री तो वहीं एक खंभे के पीछे छिपकर बैठी है।"

"तुम चलो, मैं आती हूं।"

रानी नृत्यशाला में पहुंची और ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। जब उसकी नज़र द्रौपदी की तरफ गयी तो वह गुस्से में बोली—"यह रही पापिनी ! मुझे ऐसा मालूम होता तो इसे रखती ही क्यों ? आखिर मेरे भाई के प्राण ले लिये न ? चल चाण्डालिन, तुझे भी अब अपने भाई के साथ जला दूंगी, जिससे मेरे भाई की आत्मा को सन्तोष तो होगा। बांध लो इस पापिनी को मेरे भाई की ठठरी के साथ," यह कहकर रानी ज़ोर से रोने लगी।

लोगों ने द्रौपदी को कीचक की ठठरी के साथ बांध लिया और श्मशान की तरफ़ चले।

इसी बीच भीम को इसकी ख़बर पड़ी तो उसने रसोइये का वेष उतारकर गंधर्व का विचित्र वेष धारण किया और कीचक के एक सौ पांच भाइयों को मार डाला और द्रौपदी को छुड़ाकर घर ले आया।

: ८ :

गुरु-पुत्र का वध

"लेकिन भीमसेन, आज तुम इतनी जल्दी कैसे उठ गये ?" द्रौपदी ने पूछा।

"आज हम अपने डेरे में नहीं सोये थे। बड़ी रात हुए यहीं पास के डेरे में सोने आगये थे," भीम ने कहा।

"मुझे अभी एक सपना आरहा था कि हम सब एक महा-सागर के किनारे खड़े हैं और महासागर की विशाल लहरें किनारे पर टकराकर टूटकर गिर पड़ती हैं," द्रौपदी ने कहा।

"देवी, कल तो दुर्योधन का भी अंत होगया इस कारण अब हमारी पूरी विजय समझनी चाहिए," भीम ने कहा।

इतने में दरवाज़े से आवाज़ आयी—"देवी ग़ज़ब होगया !"

"कौन है ? क्या हुआ ?"

"देवी, कुमार धृष्टद्युम्न·········"

"कुमार ने किसी को मार डाला मालूम होता है।"

"कुमार धृष्टद्युम्न मार डाले गये,"

"तुम यह क्या बोल रहे हो ?"

'और सारे पांचालों का भी संहार होगया।'

"ऐं ! पांचाल भी मारे गये ?"

"और······"

"अभी और बाक़ी रह गया है ? जल्दी से कह डाल। और क्या ?"

"और देवी, पांचाली के पुत्रों को भी क़त्ल कर दिया गया है।"

"मैं यह क्या सुन रही हूँ ?" द्रौपदी विह्वल हो गई।

"मैं सच कह रहा हूँ।"

"भाई धृष्टद्युम्न, मेरे प्यारे बच्चे, मेरे शूरवीर पांचाल, तुम सब कहां गये ? मुझे क्यों छोड़ गये ?" द्रौपदी की आंखों में से आंसुओं के बदले

आग निकलने लगी। "हां, लेकिन इन सबको मार डालने वाला पापी कौन है ? कहो तो मेरे भीम उसे भी यमराज के यहां भेजें।"

"अश्वत्थामा ने इन सबको मार डाला है।"

"अश्वत्थामा ने ! अश्वत्थामा ! अगर तुझे पांचालों को नष्ट ही कर डालना था तो मुझे ज़िन्दा क्यों छोड़ा ? यहां आया होता तो तुझे भी पता चल जाता कि द्रुपद की पुत्री तेरी क्या गति करती है।"

"देवी, शान्त होओ।" भीम ने कहा।

"भीमसेन, मुझे शान्त होने के लिए कहते हो ? मैं डरती बिलकुल नहीं हूं। मैं धृष्टद्युम्न के साथ ही अग्नि में से पैदा हुई हूं। लेकिन मुझे तो अश्वत्थामा से बदला लेना है। वह भी जान जाय कि शेरनी को छेड़ना कैसा कठिन होता है। अश्वत्थामा गया किस तरफ है ?"

"उत्तर दिशा में।"

"चलो, मैं उधर चलती हूं।"

"देवी, तुम जरा धीरज धरो। मैं उस पापी को तुम्हारे सामने लाकर उपस्थित करता हूं," भीम ने कहा।

"तुम क्या यहां लानेवाले हो। अगर तुम चाहते तो उसकी मजाल थी जो वह मेरे भाई और बच्चों पर हाथ उठाता ?" द्रौपदी बोल उठी।

इतने में युधिष्ठिर, अर्जुन और श्रीकृष्ण वहां आगये।

"देवी पांचाली शान्त होओ।"

"कैसे शांत होऊं ? जिनको मैंने दूध पिलाया उन अबोध बालकों को कोई क़त्ल कर जाय और मैं शान्त रहूं ! शेरनी के पास से उसके बच्चों को छीनकर देखो कि वह कैसे शान्त रहती है। यह तो आज मेरे दिन ही ख़राब हैं न, कि मैं यहां रही और उसने उनको मार डाला !" द्रौपदी उत्तेजित होकर बोली।

"भीमसेन, अर्जुन, तुम दोनों जाकर अश्वत्थामा को खोज निकालो। लेकिन देखना कुछ भी हो वह हमारा गुरुपुत्र है," युधिष्ठिर ने कहा।

"देखना भीमसेन, अर्जुन, मेरे पुत्रों को क़त्ल करनेवाले गुरुपुत्र का

स्पर्श भी मत करना। वह गुरुपुत्र है ?" द्रौपदी ने अपने होंठ चबाये

"और कोई मेरा एकाध बच्चा रह गया हो तो उसे गुरुपुत्र को सौंप देना और कहना कि यह रह गया था सो आपके पिता के श्रद्धालु शिष्य ने भेजा है। इसे भी समाप्त कर दीजिए। गुरुपुत्र जो है !" अन्तिम वाक्य द्रौपदी ने युधिष्ठिर को सुनाकर कहा।

"देवी, महाराज के कहने का मतलब यह नहीं।" अर्जुन ने कहा।

"नहीं तो महाराज का और क्या कहना है ? मेरे भाई को मार डाला, मेरे पांचों पुत्रों को मार डाला, पांचालों को जड़मूल से नष्ट कर दिया और फिर रहा तुम्हारा गुरुपुत्र का गुरुपुत्र ही ? ऐसे गुरुपुत्रों को मैं जानती हूं कि कैसी पूजा करनी चाहिए," द्रौपदी बोली।

"देवी, शांत होओ। मैं उसे अभी पकड़कर लाता हूँ," भीमने कहा।

"प्रिय भीमसेन, भगवान तुम्हें लम्बी उमर दे। ऐसे समय पर मेरे हृदय की व्यथा एकमात्र तुम्हीं जानते हो। आज तो मैं इस गुरुपुत्र के सिर की भूखी हूं," द्रौपदी ने कहा।

"भीमसेन, अर्जुन, तो चलो हम अश्वत्थामा की खोज में चलें और उसे पकड़ लायें," श्रीकृष्ण ने कहा।

"जनार्दन, उस पापी को जब तक आप पकड़कर नहीं लाओगे तब तक मुझे चैन नहीं मिलेगी। अगर तुम उसे नहीं लाओगे तो मैं इस रणभूमि पर बिना अन्न जल किये पड़ी रहूंगी और अपने प्राण छोड़ दूंगी," द्रौपदी ने आंखों में आंसू भरकर कहा।

द्रौपदी बैठी विलाप करने लगी और भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण अश्वत्थामा की खोज में निकल पड़े।

एक घने जंगल में वह छिपा बैठा था। भीम ने उसे खोज निकाला। भीषण युद्ध के बाद भीम ने उसे पकड़ा और रथ में डाल कर उसे द्रौपदी के सामने ले आये।

"पांचाली, लो यह रहा अश्वत्थामा," भीम ने कहा।

"पापी अश्वत्थामा !" द्रौपदी ने ललकारा।

"शत्रुओं को मारना अगर पाप है तो मैं ज़रूर पापी हूं और पाण्डवों सहित और सब लोग भी पापी हैं," अश्वत्थामा ने कहा।

"नीच ब्राह्मण, चुप करो। सोते में मेरे भाई का सिर काटते हुए शरम नहीं आयी?" द्रौपदी ने कहा।

"शरम क्यों आये? तुम्हारे भाई ने मेरे ध्यानस्थ पिता का सिर उतारा इसके बदले में मैंने तुम्हारे भाई का सिर उतार लिया। शरम अगर आनी चाहिए तो दोनों को बराबर आनी चाहिए," अश्वत्थामा ने कहा।

"नीच ब्राह्मण, मेरे पुत्रों ने तेरा क्या बिगाड़ा था? मेरे तमाम पांचालों का संहार करके मेरे मनोरथों को तूने धूल में मिला दिया। इस विजय के अमृत को तूने ज़हर कर दिया," द्रौपदी कहने लगी।

"पांचाली! द्रुपदराज की पुत्री! पाण्डवों की महारानी! मैंने यह सब अपने स्वामी दुर्योधन के मन की शांति के लिए ही किया है। बाकी तो जैसे तुम्हारे लड़के मारे गये उसी प्रकार कौरवों के भी तो अनेक बच्चे इस महायुद्ध की धूल में मिला दिये गये हैं। उनका भी तुमने विचार किया है? अठारह दिन होगये हैं। लाखों स्त्रियां टिटहरी के समान विलाप कर रही हैं। उसका पाप पाण्डवों को नहीं लगेगा और तुम्हारे पांच पुत्रों का पाप मुझे ज़रूर लग जायगा; ईश्वर के यहां ऐसा ही न्याय है क्या? पांचाली, मुझे ज़हर चढ़ा और मैंने तुम्हारे पुत्रों को मार डाला, यह बात सच है," अश्वत्थामा कहा।

"तो द्रौपदी, जो सज़ा तुम इस अश्वत्थामा को देना ठीक समझो वही सज़ा दी जाय," श्रीकृष्ण ने कहा।

"खून का बदला खून है। इसका सिर काट डालो। यद्यपि इतने से भी मेरे दिल की शांति तो नहीं होगी," पांचाली ने कहा।

"बहन, जरा शांत होओ," श्रीकृष्ण ने कहा।

"श्रीकृष्ण, मेरे रोम-रोम में दुःख और क्रोध व्याप रहा है। इस समय मैं आपे में नहीं हूं। अगर राक्षसी हो सकूं तो इस अश्वत्थामा को कच्चा-का-कच्चा खाजाने की इच्छा होती है," द्रौपदी ने कहा।

"लेकिन द्रौपदी तो राक्षसी नहीं है। वह तो द्रुपद की पुत्री है; पाण्डवों की धर्मपत्नी है। भीष्मादि की कुल-वधू है। उसके शरीर में मानव का खून है। उसके हृदय में मानव की आत्मा है। इसीसे मैं कह सकता हूं कि पांचाली शांत होओ," श्रीकृष्ण ने कहा।

"अर्जुन, इस पापी का वध करो।"

"अच्छा," अर्जुन ने कहा।

"लेकिन अर्जुन, तुम्हारा हाथ क्यों कांप रहा है? इस सारी अक्षौहिणी सेना को मारते समय तुम्हारा हाथ नहीं कांपा और अब इस एक को मारते समय रुक रहे हो?" द्रौपदी बोली।

"यह ब्राह्मण है और तिसपर गुरुपुत्र," श्रीकृष्ण ने कहा।

"अर्जुन ने तो गुरु-दक्षिणा में मेरे पिता को बांधकर द्रोणाचार्य के सामने हाजिर कर दिया था। इसने उनका ऋण तो चुक गया था," द्रौपदी से न रहा गया।

"लेकिन गुरुपुत्र का वध कैसे हो? अर्जुन का हाथ रुकना स्वाभाविक है। चाहे जैसा भी हो तो भी वह ब्राह्मण है, उसने जो कुछ भी किया वह दुर्योधन के प्रति अपनी भक्ति के कारण किया है। बाकी तो द्रौपदी, इस युद्ध में ऐसे-ऐसे काम हुए हैं कि उनका अगर हिसाब करने बैठें तो जीना दूभर हो जाय। यह तो तुम और सब पाण्डव इस युद्ध का जब निष्कर्ष निकालोगे तब ठीक-ठीक अनुभव कर सकोगे," श्रीकृष्ण ने कहा।

"श्रीकृष्ण आप भी यों कहोगे? तो भले ही इन गुरुपुत्र को जाने दो और मुझे मरने दो। अब मेरी जरूरत भी तो नहीं रही," द्रौपदी ने व्यंग्य किया।

"यों क्यों कहती हो पांचाली, काम तो तुम्हारा अब है," अर्जुन ने कहा।

"मेरी तो प्रतिज्ञा है कि या तो अश्वत्थामा का वध होगा, नहीं तो मैं अनशन करके मर जाऊंगी।"

"लेकिन अश्वत्थामा का सिर धड़ से अलग कर देने से ही क्या उसका वध हो जायगा ? श्रीकृष्ण ने पूछा।

"हां इसी से," द्रौपदी ने कहा।

"यह तो मात्र स्थूल वध है। ऐसे वध को तो सब कोई सहन कर लेते हैं," श्रीकृष्ण ने कहा।

"तो इसका दूसरा वध किस प्रकार हो सकता है ?"

"हो सकता है। सिर काटना तो स्थूल वध है। ऐसा वध तो नीच जनों का ही करना योग्य है। अश्वत्थामा का तो ब्राह्मण-वध होना चाहिए," श्रीकृष्ण ने कहा।

"ब्राह्मण-वध किस प्रकार हो ?" द्रौपदी ने पूछा।

"देवी, अगर क्षत्रिय का वध करना हो तो उसके शस्त्रास्त्र छीन लेना चाहिए। शस्त्रास्त्र के बिना क्षत्रिय मरा हुआ ही है। वैश्य का वध करना हो तो उसका व्यापार छीन लेना काफी है। शूद्र का वध करना हो तो उसका कोई अंग काट लेना ठीक है। लेकिन ब्राह्मण का वध करना हो तो उसका ब्रह्मतेज छीन लेना चाहिए," श्रीकृष्ण ने जवाब दिया।

"लेकिन उसका ब्रह्मतेज छीन लेने पर भी वह जिन्दा तो रहेगा ही न ?" द्रौपदी ने पूछा।

"हां, वह तो जियेगा ही और उसका जिन्दा रहना ही उसके वध करने का खास चिह्न है। ब्रह्मतेज से रहित होकर भी ज़िन्दा रहना ही ऐसों के लिए मौत के बराबर है। कई बार तो ऐसों को मार डालना उनपर एक प्रकार का उपकार जैसा हो जाता है," श्रीकृष्ण ने समझाया।

"श्रीकृष्ण, आप मेरे सच्चे सलाहकार हैं। मैं आपके कहे अनुसार करने को तैयार हूं," द्रौपदी ने कहा।

"तो देखो, इस अश्वत्थामा के सिर में एक मणि है। इसी में शुद्ध ब्राह्मणत्व है। ब्राह्मण के सिर में से वह मणि ले लो फिर ब्राह्मण और पशु दोनों बराबर ही समझो। जब-जब किसी ब्राह्मण का वध करना हो तो

उसके सिर की मणि छीन लेना। फिर भले ही वह संसार में भटकता फिरे," श्रीकृष्ण ने कहा।

"मुझे भी यही बात ठीक लगती है," अर्जुन ने कहा।

"तो भाई, मुझे भी यह मंजूर है। पापी अश्वत्थामा, जा, मणि रहित होकर संसार में घूम और ईश्वर तुझे चिरंजीव करे जिससे अपनी पापी देह लेकर तू जगह-जगह फिर और अपने पाप का फल भोग," द्रौपदी ने कहा।

मणि खोकर अश्वत्थामा जंगल में चला गया। लोग कहते हैं कि आज भी अश्वत्थामा, जहां महाभारत की कथा होती है, चुपचाप आकर बैठ जाता है और कथा सुनता रहता है।

: ६ :

काल के खिलौने !

महाभारत का युद्ध खतम होगया। पाण्डव विजयी हुए। इस विजय की यादगार में पाण्डवों ने एक अश्वमेध यज्ञ किया और महाराज युधिष्ठिर सार्वभौम राजा हुए।

लेकिन खून से रंगी हुई यह विजय पाण्डवों को और द्रौपदी को शांति न दे सकी। युद्धभूमि पर लाखों योद्धा मृत्यु को प्राप्त हुए और करोड़ों स्त्रियों और बालकों को विलाप करते हुए छोड़ गये। जीवन के तमाम स्नेह-सूत्र टूट जाने से धृतराष्ट्र और गान्धारी तप के लिए वन में चले गये। कुन्ती भी उनके साथ गयी। द्वारिका में यादव आपस में ही लड़कर कट मरे और श्रीकृष्ण ने भी अपनी लीला संवरण कर ली। इस प्रकार पाण्डवों के हाथ में साम्राज्य का एक स्थूल पंजर मात्र रह गया, उसका जीवन चला गया था। सारी पृथ्वी उनको शून्य और वीरान लगती थी। जीवन में मिठास नहीं रह गयी थी। इस कारण पाण्डव भी परीक्षित को गद्दी पर बिठाकर, द्रौपदी सहित हिमालय की तरफ़ चल दिये।

रास्ते में चलते-चलते एक सरोवर के पास एक महापुरुष ने अर्जुन को रोका और कहा—"पृथापुत्र अर्जुन, तुमने लोभवश अभी तक इस गांडीव को अपने पास रख छोड़ा है। अब तुम सब लोगों का अवतार-कृत्य समाप्त हो चुका है, इसलिए इस धनुष को भी फेंक दो। इस गांडीव का काम भी समाप्त हो चुका है। फिर जब इसकी जरूरत पड़ेगी तो वह अपने-आप उपस्थित हो जायगा।"

इन महापुरुष के वचनों को सुनकर अर्जुन ने गांडीव को छोड़ दिया और सब आगे चले।

"द्रौपदी, थक तो नहीं गयीं ?" भीम ने पूछा।

"अभी तो कुछ मालूम नहीं पड़ता," द्रौपदी ने कहा।

"अभी भी अगर हस्तिनापुर वापस जाना चाहती हो तो जा सकती हो," युधिष्ठिर ने कहा।

"महाराज युधिष्ठिर, आज से कुछ वर्ष पहिले हस्तिनापुर जाने का जो मोह था, आज वह नहीं रहा। जब तक सम्राज्ञी का मुकुट नहीं पहना था तब तक उसका खूब लोभ था लेकिन अब मुझे खयाल आता है कि उसके भार के नीचे कैसे भले-भले लोग दब मरते हैं; यह खयाल आते ही मैं भी आप लोगों के साथ भाग निकली," द्रौपदी ने कहा।

"लेकिन देवी, आपको तो युद्ध में बहुत रस था न ?" सहदेव ने कहा।

"हां, वनवास के दुःखों की अपेक्षा मुझे युद्ध अच्छा लगता था। लेकिन अब तो मैंने युद्ध भी देख लिया और साम्राज्य भी देख लिया। लेकिन आज यह सब व्यर्थ मालूम होता है। उस समय तो मैं युद्ध के लिए कूदती थी और युधिष्ठिर को कायर तक कह दिया करती थी लेकिन मुझे और हम सबको कहां पता था कि काल की लहरों के सामने हम सब कुछ नहीं हैं। इन अर्जुन को ही देखो न ? श्रीकृष्ण को स्त्रियों को हस्तिनापुर ला सके ? और अपनी गांडीव को भी उन्हें छोड़ना पड़ा न ? इसमें अर्जुन की क्या बहादुरी, गांडीव की भी क्या बड़ाई और श्रीकृष्ण का भी

कौन-सा बड़प्पन ? हम तो सब काल के खिलौने हैं। परमेश्वर के किसी गूढ़ संकेत के अनुसार हम सब हिरे-फिरे, शादी की, लड़े और आज हिमालय की तरफ चल रहे हैं। पृथ्वी पर से मेरे पिता अदृश्य होगये, मेरा भाई समाप्त होगया, मेरे प्यारे बच्चे सिधार गये, हजारों पांचाल लोग खतम हो गये, और अठारह अक्षौहिणी सेना भी काल के मुंह में समा गयी, कल ही कुन्ती और गान्धारी भी गयीं और आज हम लोग भी जाने को हैं। इस सब दृश्य और अदृश्य के पीछे जिसका अस्तित्व है ऐसे काल भगवान को मेरे सहस्र नमस्कार हैं," यह बोलते बोलते द्रौपदी गिर पड़ी।

"क्यों,क्या हुआ ?" अर्जुन तुरन्त द्रौपदी के पास आया और बोला।

"महाराज युधिष्ठिर, मेरा अन्त समय अब पास ही है। मुझे क्षमा कीजिए। आज जो बात समझ में आ रही है वह अगर कुछ बरस पहिले समझ में आजाती तो मैं तुम सबको लड़ाई के लिए मना ही करती। लेकिन आज तो अब ये बुद्धिमानी की बातें व्यर्थ हैं। भीमसेन, मेरे खातिर तुमने भीषण प्रतिज्ञाएं पूरी कीं। इसलिए मुझे क्षमा करो। अर्जुन मेरे लिए तुमने अनेकों का संहार किया, इसलिए मुझे क्षमा करो। नकुल, सहदेव, तुम भी क्षमा करो ...."

"लेकिन आप लोगों से मांगी क्षमा किस काम की ? क्षमा तो दुर्योधन करे तब ठीक। क्षमा तो कर्ण शकुनि करें तब ठीक। क्षमा तो यह अठारह अक्षौहिणी सेना करे तब ठीक।"

"मां, आज तुम यहां होतीं तो कैसा अच्छा होता ! लेकिन इसमें भी आपका क्या क़सूर ? आप भी तो मेरे समान काल के हाथ के खिलौने थीं। भाई धृष्टद्युम्न, मुझे देख कर हंस क्यों रहा है ? मैं भी तुम्हारे पास आरही हूं।"

पांचों पांडव द्रौपदी के सिर पर हाथ फेरकर उसे शान्त कर रहे थे और द्रौपदी के प्राण-पखेरू उसका कलेवर छोड़कर उड़ गये।

इस प्रकार पांचाल की पुत्री, द्रुपद की प्यारी पुत्री, पांडवों की प्रिय पत्नी, और धृष्टद्युम्न की बहन पृथ्वी पर से अदृश्य होगयी।

दुर्योधन

: १ :

धृतराष्ट्र का पुत्र

"भाई विदुर, देवी गांधारी की तबियत अब कैसी है?" प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र ने पूछा।

"अब तो तबियत ठीक होती जारही है।"

"यह एकाएक पेट में दर्द कैसे होने लगा?"

"गांधारी ने आवेश में आकर अपने पेट में मार लिया इससे एकदम पेट में दर्द होने लगा। गर्भवती स्त्रियां नादान होकर जब कुछ का-कुछ कर डालें तो फिर और क्या होगा?" विदुर बोले।

"बेचारी गांधारी! दुखी न हो तो करे क्या? विदुर तुम मेरे भाई हो इसलिए अपने मन की बात तुमसे कहता हूं। दो दिन पहले जब कुन्ती के सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र होने का समाचार मिला तभी से गांधारी को नींद नहीं आयी है," धृतराष्ट्र ने सिर उठाकर कहा।

"लेकिन यह तो आनन्द का समाचार था," विदुर ने कहा।

"विदुर, तुम्हारे लिए यह आनन्द का समाचार है। पांडु के यहां पहले-पहल पुत्र-रत्न हुआ इसकी खुशी तो मुझे भी हुई। लेकिन गांधारी? उसे गर्भवती हुए आज दो वर्ष होने को आये। नौ या दस महीने में ही अगर प्रसव होगया होता तो कौरव-राज्य का युवराज गांधारी ने ही प्रसव किया होता। लेकिन कुन्ती को पहले लड़का हुआ इसीलिए वह बेचारी निराश न होगी?" धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया।

"यह किसी के हाथ की बात तो है नहीं। अपने पेट में मार लेने का कारण चाहे जो हो, लेकिन पेट में मारा और दर्द हुआ इतना ही मैं जानता हूं।" विदुर बोले।

"लेकिन अब तो दर्द शांत होगया?"

"दर्द तो कभी का शांत हो गया है। जिस समय मारा था उस समय तो ज़ोर की पीड़ा हुई थी, लेकिन उसके बाद पेट में से एक कठोर लोहे जैसा मांस का पिंड निकला," विदुर बोले।

"एं! क्या कठोर मांस का पिंड?"

"बिलकुल सख्त लोहे के जैसा मांस-पिंड!"

"मांस-पिंड? गांधारी को तो शंकर का सौ पुत्र होने का वरदान था न?" धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया—"लेकिन यह तो मेरा भाग्य उसके रास्ते में आगे आया होगा न?"

"उस मांस-पिंड को देवी गांधारी फेंक रही थी कि इतने में उनको दैवी सलाह मिली कि·········।"

"दैवी सलाह!" धृतराष्ट्र ने उतावले होकर पूछा, "किसकी सलाह? शंकर की या ब्रह्मा की? क्या सलाह थी वह?"

"सलाह यह मिली कि उस मांस के टुकड़े पर ठंडा पानी डालते रहने से उस एक मांस-पिंड के सौ टुकड़े होंगे।"

"अच्छा फिर?"

"फिर उन सौ टुकड़ों को घी से भरे बर्तन में बराबर संभाल कर रख देना। फिर समय जाते उस हरेक टुकड़े में से एक-एक पुत्र पैदा होगा।"

"यह तो बड़े ताज्जुब की बात रही। महापुरुष किस प्रकार वरदान देते हैं और वे किस तरह से फलते हैं, यह कुछ समझ में नहीं आता। तो फिर तुमने इस प्रकार किया?" धृतराष्ट्र ने कहा।

"हाँ, तुरन्त ही। ऐसा करने से उस मांस के टुकड़े के सौ हिस्से हुए और उन सभी को घी के बर्तन में रखकर आया हूँ," विदुर ने बताया।

"बराबर सौ भाग हुए?"

"हाँ, बराबर सौ। फिर तो देवी को एक पुत्री की भी इच्छा हुई इसलिए सौ भागों में से जो छोटे-छोटे टुकड़े बचे थे उनको मिलाकर एक हिस्सा बनाया गया और उसमें से लड़की का जन्म होगा ऐसा मालूम पड़ता है?" विदुर बोले।

"ये सब कब पैदा होंगे ?"

"जब पूरे दो वर्ष होंगे तब।"

"अभी और दो वर्ष लगेंगे ? तब तक तो पांडु के घर दूसरा राजकुमार भी जन्म ले चुकेगा। लेकिन विदुर, 'तुमसे एक बात पूछूं ?" धृतराष्ट्र ने कहा।

"महाराज, खुशी से पूछिए।"

"लेकिन इसे तू अपने मन में ही रखना। हमारे कुल में, जिस राजकुमार का गर्भ पहले रहे वह राजा का वारिस माना जाता है या जिसका जन्म पहले होता है वह ? यद्यपि मेरे मन तो पांडु के पुत्र ही कौरवों के राज्य के वारिस हैं, इसमें कोई शक नहीं; लेकिन गर्भाधान के समय को गिनने में लेना चाहे तो ले सकते हैं या नहीं ?" धृतराष्ट्र ने शंका की।

"महाराज, आज यह सवाल पैदा ही कहां होता है ? अभी बर्तन में पड़े हुए मांस के टुकड़ों को पकने तो दो !" विदुर ने कहा।

"मैं तो यों ही पूछता हूं। मेरी आंखें तो हैं ही नहीं इसलिए मैं क्या देख सकता हूं ? और जब तक भीष्म पितामह मौजूद हैं तब तक मुझे और तुझे फिकर ही किस बात की करनी चाहिए ? यह तो एक मेरे मन में जरा-सा विचार आया और मैंने तुझको कह दिया। इस विचार का कोई अर्थ नहीं है," धृतराष्ट्र सफाई-सी देने लगे।

"बगैर अर्थ के तो मनुष्य कभी बोलता ही नहीं है। हम लोगों को जो बात बगैर अर्थ की लगती है उसमें भी अर्थ तो होता ही है और कई बार तो बहुत ही गम्भीर अर्थ होता है। हां, सुनने वाले में इस अर्थ के निकालने की शक्ति होनी चाहिए," विदुर ने कहा।

"विदुर, तुम जरा जाकर फिर से तो देवी की खबर ले आओ ? तुम्हें यहां आये बहुत देर हो गई है," धृतराष्ट्र ने बात को पलटते हुए कहा।

"अच्छा महाराज, जाता हूं।"

× × × ×

"विदुर, यह आवाज़ किस चीज़ की आ रही है ?"

"उस पहले बर्तन में से पुत्र उत्पन्न हुआ है उसकी खुशी की।"

"ऐं! क्या कहते हो? फिर से तो एक बार इन शब्दों को बोल, जिससे मैं जरा अच्छी तरह सुनूं," धृतराष्ट्र आतुरता से सुनने लगे।

"देवी गांधारी आज पुत्रवती हुई हैं।"

"देवी! देवी! आज तुमने मुझे कृतार्थ कर दिया। विदुर, तुम जाकर यह समाचार पितामह को दे दो और ब्राह्मणों को बुला कर राजकुमार के ग्रह वगैरा दिखलाओ।"

"पितामह को समाचार भेजा जा चुका है। और ज्योतिषियों को तो देवी ने कभी का बुला लिया है," विदुर ने कहा।

"तो ठीक। ज्योतिषियों से कहो कि मेरे पुत्र की कुण्डली ठीक तरह से बनायें," धृतराष्ट्र बोले।

"वे लोग कुण्डली बना रहे हैं और यह लो देवी स्वयं ही यहां आ रही हैं।"

"कहां हैं? देवी गांधारी, तुमने मुझे भाग्यशाली बना लिया," धृतराष्ट्र गद्‌गद् हो गये।

"भाग्यशाली या दुर्भाग्यशाली?"

"देवी, ऐसा न कहो। गांधारी के पुत्रों ने मेरे घर को आज आबाद कर दिया है।"

"यह कहो कि बरबाद कर दिया, आग लगा दी।"

"देवी, यह तुम क्या कह रही हो?"

"महाराज, मैं ठीक कह रही हूं। ये ज्योतिषी लोग ठीक कहते हैं कि यह पुत्र सारे कौरव-कुल का नाश करेगा।" गांधारी ने कहा।

"नहीं-नहीं, ऐसा मत कहो। अभी तो बर्तन में से बाहर ही निकला है और सारे कुल का नाश कर देगा! क्या ज्योतिषी ऐसा कह गये हैं?" धृतराष्ट्र से न रहा गया।

"ज्योतिषी लोग तो वही बात बतायेंगे जो ग्रह और लग्न में होगी," गांधारी बोली।

"ऐसे कौन-से अमंगल मुहूर्त में यह आया ?" धृतराष्ट्र ने पूछा ।

"महाराज, जब इस पुत्र का जन्म हुआ तब उसके रोने की आवाज गधे जैसी थी," विदुर ने कहा ।

"ऐसे तो सभी बच्चे जब पैदा होते हैं तो रोते हैं ।"

"और ज्योतिषी कहते थे कि उस समय गांव के सारे गधे एक साथ रेंकने लगे थे," गांधारी बोली ।

"यह तो किसी ने एक साथ सब को मारा होगा," धृतराष्ट्र ने बहाना ढूंढ़ा ।

"जैसा आपको अच्छा लगे वैसा करो । मुझे तो ज्योतिषी कहते हैं कि यह पुत्र सारे कौरव-कुल का नाश करेगा, इसलिए उसका त्याग करो," गांधारी बोली ।

"देवी ! देवी ! ये ज्योतिषी सारे-के-सारे निपूते मालूम होते हैं । तुम्हें कोई दूसरे अच्छे ज्योतिषी नहीं मिले ? त्याग करो, त्याग करो, इसका क्या मतलब हुआ ? बोलो, तुम ही इसका त्याग करने को तैयार हो क्या ?" धृतराष्ट्र ने पूछा ।

"हां, मैं तो तैयार हूं । सारे कुल की खातिर मैं अपने एक पुत्र का त्याग करने को खुशी से तैयार हूं," गांधारी बोली ।

"ये सब व्यर्थ की बातें हैं । दैव को अगर कुल का नाश ही करना होगा तो तुम इसे जंगल में भी फेंक दोगी तो वहां से भी यह बड़ा होकर हमारा नाश करने आ पहुंचेगा," धृतराष्ट्र बोले ।

"जंगल में भला दो दिन का बच्चा जिंदा ही कैसे रहेगा ?" वहां तो शेर, चीते आदि जानवर मार नहीं डालेंगे ?" विदुर बोले ।

"दैव की इच्छा हो तो शेर और चीते भी मार डालने के बदले खुद अपना ही दूध पिलाकर बड़ा कर देंगे । अगर दैव ही को हमारा विनाश करना होगा तो इस पुत्र को त्याग करने से रुक थोड़े ही जायगा ? पितामह और विदुर जैसे महान् पुरुष जिस वंश के संरक्षक हैं उस कुल का नाश करने की ताक़त किसी में नहीं हो सकती, मुझे तो उसका त्याग नहीं

करना है। विदुर, तुम्हें कैसा लगता है ?" धृतराष्ट्र ने पूछा।

"मुझे तो देवी जो कहती हैं वह ठीक लगता है। यह एक जायगा तो भी बाद में दूसरे निन्नानवें पुत्र तो हैं," विदुर बोले।

"विदुर, दूसरे निन्नानवें हैं तो क्या इसका मतलब है कि यह एक फालतू है ? संसार की जननियों से पूछो तब मालूम पड़ेगा। गांधारी कैसे त्याग की बात कर रही हैं यही मुझे समझ में नहीं आता। मैं तो कहता हूं कि उसको संभालकर रक्खो और बड़ा करो। जब बड़ा होगा तब उसको अपने अंकुश में रखना मेरा काम," धृतराष्ट्र बोले।

"आप अंकुश में रख चुके। अभी तक किसी को आपने अंकुश में रखा भी है ? जो स्वयं अपने को अंकुश में नहीं रख सकता वह दूसरे को क्या अंकुश में रक्खेगा ! अच्छी बात है; आपकी जैसी इच्छा हो करो। मुझे भी क्या पुत्र को छोड़ने का मन हो सकता है ? लेकिन जब सारे कुल का प्रश्न सामने हो, तो मैं थोड़ी देर के लिए अपने हृदय को पत्थर बनाकर भी त्याग करने को तैयार हूं," गांधारी बोली।

"देवी, त्याग करने की कोई जरूरत नहीं है। ये ब्राह्मण तो अपना माहात्म्य बढ़ाने के लिए ऐसी ही बातें बनाया करते हैं। उससे हमें घबराना नहीं चाहिए। ब्राह्मणों से कहो कि कौरव-कुल के ऊपर अगर कोई आफत आती हुई मालूम पड़ती है, तो उसके निवारण के लिए मन्त्र, जप, त्याग, यज्ञ जो कुछ करना हो करो, दक्षिणा लो और जितनी चाहिए उतनी देव-पूजा करो। कुरु-कुल के ऊपर अगर संकट आने जैसा हो तो उसकी निवृत्ति के लिए और जो कुछ करना हो भली-भांति करो," धृतराष्ट्र बोले।

"अगर आपकी ऐसी ही इच्छा है तो ऐसा ही सही।"

"और अब आगे से त्याग करने का नाम भी मत लेना। मेरे इस पुत्र को मेरे पास ले आओ। मेरी आंखें तो हैं नहीं कि इसे देख सकूँ। लेकिन उसके कोमल शरीर पर हाथ फेरकर ही मैं सुखी हो लूंगा," धृतराष्ट्र ने कहा।

: २ :

चंडाल-चौकड़ी

हस्तिनापुर के राजमहल की एक छत पर दुर्योधन घूम रहा था। दूरी पर यमुना नदी का पानी तेजी से बह रहा था। थोड़ी ही देर बाद शकुनि, दुःशासन और कर्ण भी आ पहुंचे।

"क्यों दुर्योधन, किस विचार में पड़े हुए हो?" छत पर बैठते हुए शकुनि ने पूछा।

शकुनि के शब्द दुर्योधन के कानों से टकराकर वापस आगये।

"मालूम होता है किसी भारी चिन्ता में पड़े हैं," शकुनि गुनगुनाया।

"भाई साहब, देखिए!" दुःशासन ने दुर्योधन के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "ये मामा और कर्ण आये हुए हैं।"

"आइये, मामा।"

"क्यों किसी गहरे विचार में पड़े हुए हो? सामने क्या देख रहे थे?"

"अपनी जीवन-कथा।"

"यानी, उस पानी पर तेरी जीवन-कथा लिखी हुई है?"

"हां, उस पानी पर लिखी है; सामने के पेड़ों पर लिखी हुई है; इस ऊपर के अनन्त आकाश में लिखी हुई है;और सबसे ज्यादा साफ-साफ तो मेरे अन्तर में लिखी हुई है," दुर्योधन धीरे-धीरे बोला।

"महाराज निराश-जैसे हो गये हैं तभी ऐसी बातें कर रहे हैं।" कर्ण बोला।

"हां, अब निराश तो मैं इतना हो गया हूँ कि इस निराशा में से आशा का ज़रा-सा भी अंकुर उगने की अब आशा नहीं रही है," दुर्योधन ने कहा।

"दुर्योधन, ऐसी भी कौन सी बात है? अरे भाई, निराशाओं में से

ही तो आशा का जन्म होता है। मनुष्य जब एकदम निराश हो जाता है तब तो इस शरीर को छोड़कर आत्मा भी अपना रास्ता नाप लेती है," शकुनि बोला।

"तब तो मेरा भी ऐसा ही होगा। अब जीवन का कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा," दुर्योधन निराश होकर बोला।

"महाराज,यह आप क्या कह रहे हैं ? कल सुबह ही तो आप चक्रवर्ती राजा होने वाले हैं और सब जगह आपको आनन्द-ही-आनन्द दिखाई देगा," कर्ण बोला।

"कर्ण, बुरा मत मानना। रथ हांकते-हांकते जो एकदम अंगदेश का राजा हो जाये वह मेरे दुःख की कल्पना ही नहीं कर सकता," दुर्योधन की आंखें गुस्से से लाल हो रही थीं।

"लेकिन दुर्योधन, अभी हमने प्रयत्न करना कहां छोड़ दिया है ?" शकुनि ने कहा।

"मुझे यही तो खटकता है। हम लोगों ने कितने प्रयत्न किये,लेकिन एक में भी सफल नहीं हुए। तुम देख रहे हो ? यह यमुना नदी का पानी मुझे देखकर हंसता है। भीम को ज़हर खिलाकर हम लोगों ने गंगा में डुबो दिया, लेकिन वह तो पाताल में से और भी ज्यादा मज़बूत बनकर निकला। ऐसा है हमारा प्रयत्न," दुर्योधन बोला।

"पर किसी समय अपना दांव उलटा भी तो पड़ सकता है न !"

"किसी समय नहीं, मेरे तो सारे ही प्रयत्नों में उलटे दांव पड़े हैं, मामा तुम्हारे कहने से मैंने लाख का मकान तैयार कराया और पांडवों को जला देने के लिए पुरोचन को वहां भेजा। फिर भी पांडव जले तो नहीं, उलटे द्रौपदी को प्राप्त करके और ज्यादा शक्तिशाली बनकर यहां आगये," दुर्योधन बोला।

"अब इन गई-गुज़री बातों को याद करने से फायदा ?"

"मामा, तुम्हारे मन ये गई-गुज़री होंगी; लेकिन मेरे मन तो ये सब बातें इतनी ताज़ा हैं कि मानो आज ही हुई हों। ये मेरे दिल को मानो

अन्दर-ही-अन्दर उतर रही हैं। वह सामने नदी के ऊपर का काला बादल मुझे कह रहा है कि "दुर्योधन, तू चाहे जितना पुरुषार्थ करले, अन्त में तो तेरी पराजय ही है।"

"तो तू ऐसा मानता है कि पुरुषार्थ व्यर्थ है ? अरे, अगर पुरुषार्थ व्यर्थ होता तो पांडव आज इस महल में मौज उड़ाते और दुर्योधन तथा भानुमती वल्कल पहन कर द्वैत-वन में भटकते होते। यह तुम निश्चय-पूर्वक समझो कि जो भाग्य की बातें किया करते हैं उनका मन रोगी है," शकुनि ने ज़ोर देकर कहा।

"चाहे जो हो, मुझे तो अपने जीवन में यही अनुभव हुआ है कि पांडवों को कुचलने के हमने ज्यों-ज्यों प्रयत्न किये हैं त्यों-त्यों दैव ने उनकी ही सहायता की है। राजसूय यज्ञ में तो, मामा तुम थे ही नहीं, जब शिशुपाल ने श्रीकृष्ण के पूजन के खिलाफ़ आपत्ति की उस समय थोड़ी देर के लिए तो मेरे मन में ज़रूर यह विचार आया कि चलो अब इस समय तो इस यज्ञ में बाधा पड़ेगी और यह असफल होगा। लेकिन इतने में तो शिशुपाल का सिर ही धड़ पर से अलग जा गिरा और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ," दुर्योधन बोला।

"फिर वही गई-गुज़री बातें ! पर आज ज़रा देख तो कि वे सब लोग जंगल में भटक रहे हैं ! अब तुझे चिंता किस बात की है ?" शकुनि ने पूछा।

"मामा, चिंता तो जब तक ये लोग ज़िन्दा रहेंगे तब तक रहेगी। सुनो ! जंगल में पांडवों को शाप देने के लिए हम लोगों ने दुर्वासा को हज़ारों शिष्यों के साथ भेजा, लेकिन पता नहीं क्यों, दुर्वासा और उनके शिष्य वापस चलते बने," दुर्योधन ने कहा।

"ख़याल तो ऐसा ही था कि असंयम में ही दुर्वासा पांडवों की झोंपड़ी में जायंगे और भोजनातिथ्य न मिलने पर शाप से उन लोगों को भस्म कर देंगे," दुःशासन बोला।

"बात ही ऐसी है। जब हम कोई बात सोचते हैं तब उस समय तो

ऐसी मालूम होती है अब पूरी पड़ी। लेकिन कौन जाने कहां से उन युक्तियों में से भी पांडवों को बच निकलने का रास्ता मिल जाता है और हमारी सारी मेहनत फ़िज़ूल हो जाती है ?" दुर्योधन बोला।

"ऐसा ही है ? देखो न, हमने जयद्रथ को द्रौपदी का हरण करने के लिए भेजा था......" दुःशासन ने बोलना शुरू किया।

"और खुद ही पकड़ा गया", कर्ण ने बात को खत्म करते हुए कहा।

"और मामा, जब हम सब गंधर्वों के साथ लड़ रहे थे तब भाई साहब को पांडवों ने ही जाकर छुड़ाया," दुःशासन ने कहा।

"मामा, ये सब बातें एक-एक करके जब मेरे स्मृतिपटल पर खड़ी होती हैं तब मेरे शरीर के रोयें खड़े हो जाते हैं, शरीर से पसीना निकलने लगता है और खून पानी हो जाता है।"

"ऐसा होना स्वाभाविक है। लेकिन हिम्मत हारने की ज़रूरत नहीं" शकुनि ने कहा।

"मामा, आप पहले थोड़ी देर के लिए कुरुराज धृतराष्ट्र के पुत्र हो जाओ तब मेरी मनःस्थिति को अनुभव कर सकोगे। और फिर क्या सलाह देना यह भी आप जान जाओगे," दुर्योधन चिढ़ गया।

"जो होगया उसके लिए शोक करके, उस बात को लेकर, उस पर चिपटे रहना यह आदमी के कमज़ोर मन की निशानी है। जो होगया सो होगया। अब आगे कल क्या करना है उसका विचार बुद्धिमान आदमी करते हैं।"

"आने वाला कल आज ही का तो बनाया हुआ है। बीते हुए कल को भूल कर आने वाले कल का विचार करनेवाला बिलकुल मूर्ख है। मामा, आपको चाहे जैसा दिखायी देता हो लेकिन मुझे तो दीये की तरह साफ़ दिखायी देता है कि हमारी सारी युक्ति-प्रयुक्तियों का अब दिवाला निकल चुका है," दुर्योधन ने साफ़ साफ़ कहा।

"तो फिर हाथ-पैर जोड़ कर छत पर बैठे-बैठे नदी के प्रवाह को देखा करो और बीते हुए दिन का ख़याल किया करो। बस, तुरन्त ही साम्राज्य

आस्मान में से उतर कर दुर्योधन की गोदी में आजायगा," शकुनि ने सिर खुजलाते हुए कहा।

"मिल गया साम्राज्य ऐसा करने से," दु.शासन से न रहा गया।

"साम्राज्य तो मिलेगा तलवार की धार से !" कर्ण बोला।

"तुम सब लोग व्यर्थ की बड़ाई मारते हो। कर्ण, बुरा न मानना। विराट के युद्ध के मैदान में जब अकेला अर्जुन गायों के झुण्ड में से शेर की तरह आया तब तुम्हारी तलवार की धार कहां चली गई थी ? तुम लोग बस हां में हां मिलाने वाले हो," दुर्योधन क्रोध से बोला।

"महाराज, आपकी हां में हां मिलाने का तो कोई सवाल नहीं है !" कर्ण सकुचाता हुआ बोला।

"तब फिर कौन-सा सवाल है ? पाण्डवों को जब वन में भेजा उस समय हम लोग यह ख़याल करते थे कि तेरह वर्ष के अन्दर तो हम लोग अच्छी तरह से जम जायंगे। लेकिन ये तेरह वर्ष भी पूरे हुए और कल तो पाण्डवों और द्रौपदी को मैं हस्तिनापुर के दरवाजे में घुसते हुए देखता हूं," दुर्योधन बोला।

"हस्तिनापुर के दरवाजे केवल लकड़ी के ही नहीं बने हैं," कर्ण बोला।

"सिर्फ लकड़ी के क्या घास के भी नहीं बने हुए हैं। विराट के मैदान में एक छः वर्ष के बालक ने हमारे कपड़ों को उतार लिया, उस दिन हमारी तलवारें काठ की थीं या घास की ?" दुर्योधन बोल उठा।

"अब कुछ करना-धरना है या नहीं ? अगर तेरी इसी प्रकार की इच्छा है तो हम सब लोग अपने-अपने घर चले जाते हैं और तुम्हें जैसा अच्छा लगे वैसा करो। दुःशासन चलो उठो," शकुनि ज़रा गरम हुआ।

"अब जाते कहां हैं ?"

"क्यों ? अब हमारा तो कोई काम रहा नहीं।"

"अब तो हम चारों आदमी एक साथ ही जायंगे। आज तक मैं

आपकी सलाहों पर चला हूं, और आज जब मुझे मार्ग नहीं दिखायी दे रहा उस समय मैं आपको कैसे जाने दूँ ? अब तो मैं भी गिरूंगा और आपको भी गिराऊंगा।" दुर्योधन बोला।

"तभी तो मज़ा आयेगा। तू जब हिम्मत हार जाता है तब मुझे अच्छा नहीं लगता। इस साम्राज्य प्राप्त करने के प्रयत्न ही में तो मज़ा है," शकुनि बोला।

'मामा, सच कहता हूँ पांडवों को वश में करने के आज तक के हमारे तमाम प्रयत्न निष्फल हुए हैं। इन सब बातों पर जब मैं आज नज़र डालता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि जगत् में पुरुषार्थ को सफल होने के लिए किसी दूसरे तत्त्व की ज़रूरत होती है। अगर अकेला पुरुषार्थ ही काफ़ी होता तो पांडव कभी के ख़त्म हो गये होते। लेकिन मामा ! तुम्हारी इस गिनती में वही कोई एकाध अंक कम पड़ जाता है और वह सारे हिसाब को ग़लत कर देता है।"

"तो अब करना क्या है, उसका ही विचार करो न ?" कर्ण बोला।

"विचार क्या करना है ? जो मामा का विचार वह सबका विचार," दुःशासन बोला।

"मामा, आप सब बात जानते हैं। पांडव, विराट के यहां प्रकट तो हो ही गये हैं। विराट की सभा में उन्होंने द्रुपद वग़ैरा को इकट्ठा किया है। अब वे राज्य के लिए अपनी मांग भी पेश करेंगे ही, इसमें कोई संदेह ही नहीं," दुर्योधन ने बताया।

"ठीक बात है ?"

"तब फिर हमें क्या करना चाहिए ?"

"दुर्योधन जिस प्रकार कहे उसी प्रकार पांडवों को राज्य सौंप देना चाहिये और तुम सब अपनी-अपनी रानियों को लेकर द्वैत-वन चले जाओ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा और तुम लोगों को वहां पहुंचाकर सीधा गांधार देश चला जाऊंगा," शकुनि ने ताना मारा।

"पांडवों को राज्य दे दूँ !" दुर्योधन गरज कर बोला।

"न देना हो तो जिंदा रहते कोई प्रयत्न न छोड़ो और ऐसी युक्तियां खोजो कि खुद ईश्वर भी चकित होजाय और कहे कि हां, यह भी कोई मर्द है। अगर तिस पर भी सफल न हो सको तो हंसते हंसते निष्फल हो जाओ और धूल झटक कर खड़े हो जाओ। तुम्हारी जगह मैं होता तो यही करता," शकुनि ने समझाया।

"तो पांडवों का अन्त हो जाय ऐसा कोई मार्ग फिर खोज निकालो न ? मैं उसके लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ।"

"तो देख, पांडव अपना राज्य मांगेंगे।"

"मैं नहीं दूँगा।"

"वे लोग तुम्हारे पिता के पैरों पड़ेंगे।"

"मैं नहीं देने दूंगा।"

"लेकिन ये भीष्म और द्रोण शांति और न्याय की सलाह देंगे।"

"भीष्म और द्रोण को तो मैंने कभी का ख़रीद रक्खा है। उन्हें सच बोलने का संतोष मिल जाय इसलिए मैं उनको उनकी मर्ज़ी के अनुसार बोलने भर देता हूं। बाकी हैं तो वे हमारे ही पक्ष में, यह निश्चय समझना," दुर्योधन ने कहा।

"पांडव जब मांगेंगे तब वे तुम्हारे पिता को समझायेंगे, धर्म की बातें कहेंगे और अन्त में श्रीकृष्ण से कहलाये बग़ैर नहीं रहेंगे," शकुनि बोला।

"श्रीकृष्ण भले ही आयें। लेकिन उनसे कैसे निबटना यह आपको बताना पड़ेगा; क्योंकि इसकी बात कुछ और है," दुर्योधन बोला।

"इसमें सिखाने या बताने की कोई बात नहीं है। तू तो बस एक ही बात को लेकर अड़ जाना और पांडवों को एक सूत भी ज़मीन न देने का हठ पकड़ लेना। धृतराष्ट्र देने के लिए कहें तो तुम कहना कि अगर आप मुझपर ज़ोर डालेंगे तो मैं मर जाऊंगा। अन्तिम रूप से जब तू यह जता देगा तो तेरा भी पिता तेरे सामने बिलकुल ग़रीब हो जायगा," शकुनि ने युक्ति बतलायी।

"यह तो मैं ज़रूर कर लूंगा।"

"तब तो बस बेड़ा पार है।"

"अगर फिर लड़ाई हुई तो ?" दुर्योधन बोला।

"ये सब लड़ाई-वड़ाई की बातें झूठी हैं। पांडवों को अगर लड़ना होता तो कभी के लड़ लिये होते। उनको लड़ना नहीं है। वे तो सिर्फ लड़ाई के नाम से तुम लोगों को डराते हैं," शकुनि बोला।

"नहीं, नहीं ! मुझे लगता है कि ये लोग अब लड़े बिना नहीं रहेंगे," दुर्योधन कुछ सहमता-सा बोला।

"तू नहीं जानता। ये तुम्हारे भीष्म-द्रोण एक दिन में सारी पृथ्वी को नष्ट करदें ऐसे हैं। क्या ये बातें पांडव नहीं जानते ? वे जानते हैं, तभी तो लड़ाई नहीं करते हैं। और बार-बार शांति और सुलह की दुहाई देते हैं—तुम अपने इन दोनों बूढ़ों को अपने पक्ष में रख लोगे तो समझना कि फिर बेड़ा पार है," शकुनि ने कहा।

"ये लोग तो मेरी जेब में ही हैं।"

"तो तुम बिलकुल दृढ़ रहो और अपने पिता को भी दृढ़ रक्खो और इन थोड़े दिनों में पांडव क्या करते हैं यह देखने के बाद हम लोग आगे का कार्यक्रम निश्चित करेंगे," शकुनि बोला।

"अच्छा मामा ! आप भी और विचार कर रखना। मालूम होता है अब हम लोग ज्यादा राह नहीं देख सकेंगे,"

"राह देखने की तो जरूरत ही नहीं। और तुम्हें जल्दी करने की भी जरूरत नहीं। अभी तो ये लोग क्या करते हैं यह देखना चाहिए," शकुनि बोला।

बात-ही-बात में रात ज्यादा बीत गयी थी। आस-पास के मैदान में पक्षीगण शांत हो गये थे। बीच-बीच में उल्लू उस शांति में कहीं-कहीं पक्षियों का संहार करके खलल मचा रहे थे।

हस्तिनापुर की चंडाल-चौकड़ी शून्य आकाश में अपना भविष्य देखती-देखती विदा हुई।

: ३ :

युद्ध की तैयारी

"क्यों दुःशासन, मामा को बड़ी देर लग गयी ?" दुर्योधन बोला।

"मुझसे तो यह कहा था कि कर्ण को लेकर मैं अभी आता हूं। पर लो, वह आ ही रहे हैं," दुःशासन ने जवाब दिया।

"महाराज दुर्योधन की जय हो !" भवन में घुसते ही शकुनि बोला।

"महाराज दुर्योधन की जय हो!" कर्ण ने भी जयजयकार किया।

"क्यों मामा, यह नया मज़ाक कब से खोज निकाला ?" दुर्योधन ने पूछा।

"यह दिल्लगी नहीं बल्कि एकदम सत्य है," कर्ण ने गम्भीरता से कहा।

"दुर्योधन, अब इन बातों को जाने दो। तुम कर क्या आये, यह कहो ?" शकुनि ने पूछा।

"इस बारे में तो भाई साहब की सचमुच ही विजय है, मामा," दुःशासन फूल गया।

"क्या हुआ ?" कर्ण ने पूछा।

"यह तो भाई साहब के मुंह से सुनोगे तो ही मज़ा आयगा।"

"बोलो भाई साहब, तुम्हीं कहो," शकुनि ने कहा।

"मामा, मैं द्वारिका पहुँचा तो उसी समय अर्जुन भी वहां आ पहुँचा," दुर्योधन बोला।

"यह तो बड़ा अपशकुन हुआ," शकुनि बोला।

"मामा, तुम भूलते हो। मुझे पहले तो ऐसा मालूम पड़ा, लेकिन अन्त में तो यह अपशकुन शुभ शकुन में बदल गया," दुर्योधन बोला।

"ऐसी बात ! तो एक बार शुरू से सब कह डाल कि क्या-क्या हुआ," शकुनि बोला।

"अर्जुन द्वारिका पहुंचा तो सही, लेकिन मैं उसकी तरफ ध्यान दिये

बगैर ही सीधा श्रीकृष्ण के महल में चला गया," दुर्योधन ने कहा।

"फिर ?"

"श्रीकृष्ण सो रहे थे इसलिए मैं तो उनके सिरहाने की ओर एक बड़ा और अच्छा-सा आसन बिछा हुआ था उसपर जाकर बैठ गया।" दुर्योधन मुसकाया।

"फिर ?"

"फिर थोड़ी देर बाद वहां अर्जुन भी आया," दुर्योधन ने बात चलाते हुए कहा।

"भाई साहब पहले पहुंच गये यह अच्छा हुआ," दु:शासन बोला।

"फिर अर्जुन कहां बैठा ?" कर्ण बोला।

"बैठता कहां ! श्रीकृष्ण के सिरहाने तो मैं बैठा हुआ था; इसलिए अर्जुन श्रीकृष्ण के पैताने खड़ा रहा," दुर्योधन बोला।

"तू श्रीकृष्ण के सिरहाने बैठा और अर्जुन श्रीकृष्ण के पैताने खड़ा रहा; तब तो तुम्हारे शकुन अच्छे हुए ऐसा समझना चाहिए। अच्छा फिर ?" शकुनि बोला।

"फिर थोड़ी देर बाद श्रीकृष्ण जागे और उठकर बैठ गये।"

"याने........।"

"याने यह कि अर्जुन ने उनको नमस्कार किया।"

"और भाई साहब, आपने ?"

"उन्होंने अर्जुन को ही पहले देखा। अर्जुन के साथ थोड़ी-सी बातें कीं तब तक उनको तो मालूम ही नहीं पड़ा कि मैं भी वहां बैठा हूं।"

"अच्छा ?"

"जब वह ज़रा मुड़े तो मैं उनको दिखायी दिया। तब तो श्रीकृष्ण पलंग पर से नीचे उतरकर मुझसे मिले और मुझे अपने पलंगपर बैठाया," दुर्योधन बोला।

"और अर्जुन को ?"

"अर्जुन तो नीचे ही खड़ा रहा।"

"यह तो ठीक, लेकिन अब ख़ास बातों पर आओ !" शकुनि उतावला होरहा था, श्रीकृष्ण ने हम लोगों को कितनी मदद दी ?"

"मामा, यह सब मैं कहता हूं। मैं जो कहता हूं वे सब ख़ास बातें ही हैं। उसके बाद श्रीकृष्ण ने मुझसे आने का कारण पूछा, और अर्जुन, से भी पूछा।"

"अर्जुन ने क्या कहा ?"

"दोनों के आने का कारण स्पष्ट था। हम दोनों ही श्रीकृष्ण से सहायता लेने गये थे," दुर्योधन बोला।

"तब तो श्रीकृष्ण विचार में पड़ गये होंगे," कर्ण बोला।

"पड़े ही होंगे। मैंने तो समझाया, कि आप हमारे संबन्धी हैं, और महाराज धृतराष्ट्र के मित्र हैं। इसलिए हमारी मदद करनी चाहिए," दुर्योधन बोला।

"ठीक कहा। अर्जुन क्या बोला ?" शकुनि ने पूछा।

"अर्जुन ने तो सिर्फ एक ही बात कही, मैं आपकी सहायता चाहता हूं।'

"तेरह वर्ष वन में भटक कर पांडव बेचारे भिखारी-जैसे दीन बन गये मालूम होते हैं। अच्छा तो फिर ?" कर्ण बोला।

"फिर श्रीकृष्ण थोड़ी देर विचार करके बोले, मुझे तो तुम दोनों की सहायता करनी है, यह तो निश्चय ही है। मैंने ऐसा निश्चय किया है कि तुम्हारे इस युद्ध में मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करूंगा। एक ओर शस्त्रास्त्र-रहित मैं अकेला रहूंगा और दूसरी तरफ शस्त्रास्त्रों से सजी हुई मेरी अक्षौहिणी यादव-सेना रहेगी। इन दो में से जो भी तुम लोगों को पसन्द हो, पसन्द करलो ! पहली पसन्दगी अर्जुन करेगा।"

"पहली पसन्दगी अर्जुन किसलिए करेगा ?" शकुनि की आंखें फट पड़ीं।

"पहले तो भाई साहब आप पहुंचे थे न ?" दुःशासन से रहा नहीं गया।

"यह प्रश्न तो मैंने वहीं उठाया था। लेकिन श्रीकृष्ण कहने लगे, 'मैंने अर्जुन को पहले देखा है और दूसरी बात यह है कि तुम दोनों में

अर्जुन छोटा है इसलिए पहली मांग का अधिकार मैं अर्जुन को देता हूं।"

"मैं इसीलिए कहता था कि यह अपशकुन ही हुआ," शकुनि बोला।

"लेकिन मामा, पूरी बात तो सुनो," दुर्योधन बोला।

"अच्छा फिर अर्जुन ने क्या मांगा, यह सुनने लायक है," दुःशासन ने कहा।

"अर्जुन ने बगैर शस्त्रास्त्र के सिर्फ श्रीकृष्ण को ही मांगा," दुर्योधन बोला।

"अकेले श्रीकृष्ण को ही !" शकुनि को आश्चर्य हुआ।

"हां, अकेले श्रीकृष्ण को और यह बिलकुल तय होगया है कि इस लड़ाई में श्रीकृष्ण खुद नहीं लड़ेंगे, इतना ही नहीं, बल्कि वे हाथ में शस्त्र भी नहीं लेंगे," दुर्योधन बोला।

"और तुमने क्या मांगा ?"

"फिर मेरे लिए तो मांगने को कुछ रहा नहीं गया था। मेरे हिस्से में तो सारी यादव सेना आ गयी" दुर्योधन आनन्द में आकर बोला।

"अर्जुन को पहले मांगने का मौका मिला तो भी उसने अकेले कृष्ण को ही मांगा। और कृष्ण लड़ाई में शस्त्र नहीं लेंगे, यह जानते हुए भी अर्जुन ने उनको मांगा। और लड़ाई में लड़ने वाली और अपना प्राण देने वाली सेना तुझे मिली ?" शकुनि का कुछ समाधान नहीं होरहा था।

"मामा, इसमें इतने विचार की क्या बात है ?" दुर्योधन बोला।

"यह सारा रहस्य मेरी समझ में नहीं आता। क्या वनवास के कारण अर्जुन इतना मूढ़ बन गया है कि एक छोटा-सा बालक समझ जाय ऐसी बात भी वह नहीं समझ सका और तुझे सारी सेना दे दी !" शकुनि बोला।

"मामा, मुझे तो यही मालूम होता है कि इस समय अर्जुन अपनी बुद्धि खो बैठा है। मुझे तो लगता है कि इस लड़ाई में पाण्डव जरूर हारने वाले हैं।" दुर्योधन की वाणी में निश्चय था।

"मामा जैसे कहते हैं वैसे ही मेरी समझ में यह बात नहीं आती। लेकिन अर्जुन ने श्रीकृष्ण को शायद अपना रथ हांकने के लिए लिया हो

तो ?" कर्ण गुत्थी सुलझाने का प्रयत्न करने लगा।

"मान लो कि अपना रथ हांकने के लिए ही लिया हो; लेकिन जो काम एक मामूली आदमी कर सकता है उसके लिए सारी यादवसेना को छोड़ देना बुद्धि का दिवाला नहीं तो और क्या है ? मैं तो यही कहता हूं कि पांडवों ने आज अपनी बुद्धि का दिवाला निकाल दिया है और यही हम लोगों के लिए अच्छे शकुन हैं," दुर्योधन बोला।

"शकुन तो जो हो वह ठीक ही है। लेकिन यह सारी बात मेरी समझ में नहीं आती। खैर, अब हमें अपनी तैयारी तो करनी ही चाहिए," शकुनि, कुछ समझ में नहीं आया है, इस भाव से बोला।

"पाण्डव तो उपप्लव्य के पास डेरा डाले पड़े हुए हैं। उनके पास सात अक्षौहिणी ही सेना इकट्ठी हुई है और अपने पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना हो गई है। इसलिए मैं इस युद्ध में स्पष्ट रूप से पांडवों की हार देख रहा हूं," दुर्योधन बोला।

'तो अब क्या देर है ?"

"देर तो अब इसलिए है कि आज सुबह ही समाचार मिले हैं कि श्रीकृष्ण स्वयं हस्तिनापुर आ रहे हैं," दुर्योधन ने कहा।

"ऐसी बात है ? मालूम होता है बेचारे अर्जुन ने सलाह-मशविरे के लिए ही कृष्ण को पसन्द किया होगा," कर्ण बोला।

"कृष्ण यहां आ रहे हैं ?" शकुनि ने पूछा।

"मामा, इसमें घबराने की क्या बात है ?" दुर्योधन को शकुनि की शंका अनुचित दिखायी दी।

"कारण तो कोई नहीं है, लेकिन मैं कुछ डर रहा हूं। न जाने क्यों, पर मुझे भय है कि कृष्ण दुर्योधन को कहीं फंसा मारेंगे," शकुनि बोला।

"मामा, मुझे ? अब आप ऐसी आशा न रक्खें।"

"लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि तुझे फंसायेंगे, तेरे बाप को समझायेंगे; डरायेंगे, भीष्म-द्रोण को उलटी-सीधी पट्टी पढ़ायेंगे और सबको इकट्ठा करके तुझे शर्मिन्दा करेंगे," शकुनि बोला।

"मामा, इस बात की बिलकुल फिक्र मत करो। पिताजी को फंसना हो तो खुशी से फंसें, भीष्म और द्रोण को न लड़ना हो तो वे खुशी से न लड़ें, जिसको जाना हो वह भले ही चला जाय। मैं अकेला ही लड़ूंगा। मेरा कर्ण लड़ेगा। अब किसी की ताकत नहीं कि मुझे इस युद्ध से रोक सके," दुर्योधन बोला।

"तू भले ही जैसा तुझे अच्छा लगे वैसा कह। लेकिन मुझे जो डर है वह मैंने फिर कह दिया कि यह कृष्ण आ रहा है तो यों ही नहीं आ रहा है। उसके मन में न जाने कितनी बातें भरी होंगी," शकुनि बोला।

'मामा, अब आप व्यर्थ में ही ऐसा सोच विचार करते हैं। अब श्रीकृष्ण की या आपकी किसी युक्ति-प्रयुक्ति का समय रहा ही नहीं। अब तो सीधी लड़ाई का ही मामला है और उसमें श्रीकृष्ण का कुछ भी चलने वाला नहीं," दुर्योधन बोला।

"तुम सोच-समझ कर चलना। अगर उस कृष्ण के जाल में फंस गये तो मरे ही समझना," शकुनि बोला।

"भाई साहब मुझे तो एक ही सीधा-सादा उपाय सूझता है और वह यह कि कृष्ण जो भी कहें उस सबका जवाब एक सिर्फ नन्ने से ही देना। बस फिर मामला साफ है," दुःशासन बोला।

"खुद अकेला पांडवों के साथ रहेगा और सारी यादव सेना तुम्हें दे दी है। इसमें भी मुझे तो धोखा ही मालूम पड़ता है। कहीं लड़ाई के समय यह सारी यादव सेना पांडवों की ओर न चली जाय ?" शकुनि बोला।

"मामा, ऐसा गजब तो कोई भी नहीं कर सकता, तो क्या श्रीकृष्ण करेंगे ?" दुर्योधन ने पूछा।

"मुझे उस पर तो जरा भी भरोसा नहीं। पांडव चाहे कितने ही नीच हों, लेकिन ऐसा नहीं करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है; लेकिन कृष्ण के बारे में ऐसा मैं नहीं मान सकता," शकुनि बोला।

"मामा, ऐसा हो नहीं सकता। अब मैं तो जाता हूं। कल श्रीकृष्ण आयें उसके पहले ही पिताजी से मिल लेना चाहता हूं," दुर्योधन बोला।

"अच्छा, कल की सभा में मैं तो आऊँगा नहीं। मेरा वहां काम ही क्या है ?" शकुनि बोला।

"लेकिन मामा, आपकी सलाह की तो भाई साहब को जरूरत होगी न ?"

"सलाह तो यही है कि किसी तरह भी पांडवों से सन्धि नहीं करना। सन्धि करने के लिए जरा हां कहा या जरा-सी भी इच्छा दिखायी कि बस मौत ही समझो। लड़ाई के सिवा दूसरी बात ही मत करना। तुम सब लोगों को अगर जिन्दा रहना है तो इस लड़ाई में पांडवों को खत्म करदो और फिर सुख से राज्य करो। पांडवों को मारने के लिए मैंने अपने सब दांव-पेंच लगाकर देख लिये हैं और यह आखिरी दाव है," शकुनि बोला।

"महाराज तो दृढ़ हैं ही। अच्छा तो अब हमें चलना चाहिए," कर्ण बोला।

और चंडाल-चौकड़ी बिदा हुई।

: ४ :

सन्धि के समय

"दुर्योधन, सच कहता हूं, तुम इतने दृढ़ रहोगे, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी," शकुनि बोला।

"मामा, क्या कहूं ? मैं तो आज तक यही समझता आया कि चालाकी में आप ही होशियार हैं। लेकिन मामा, श्रीकृष्ण की चालाकी तो तुमसे भी चढ़ जाती है। उनकी बोल-चाल, उनके हाव-भाव, सब बड़े-बड़ों को भी भुलावे में डाल देने वाले होते हैं," दुर्योधन बोला।

"लेकिन भाई साहब, आप शुरू से जमाकर बात करें न ?"

"हां, अब शुरू से लेकर अब तक की सब बातें हमें बताओ," कर्ण बोला।

"श्रीकृष्ण पांडवों की ओर से सन्धि की चर्चा करने आये थे। उनका दिखावा ही ऐसा भव्य था कि अगर कोई सीधा-सादा आदमी होता तो

ख़त्म ही हो जाता। ऊंचे कान वाले चार बड़े-बड़े घोड़े, मेघ के समान नाद करने वाला गम्भीर रथ, चालाक सारथी और अन्दर खुद थे। गले में मनोहर माला, विशाल उनकी आंखें और भव्य ललाट। उनके रथ के आस-पास कितने ही लोग उनकी वाणी सुनने के लिए आतुर-से हो रहे थे। उनकी ऐसी शान देखते ही पितामह और द्रोण तो उनके पैरों में पड़ गये।" दुर्योधन बोला।

"भीष्म और द्रोण तो पड़ेंगे ही, लेकिन तू और कर्ण भी पड़े क्या?" शकुनि ने कहा।

"हां, श्रीकृष्ण को देखकर थोड़ी देर के लिए तो मुझे भी ऐसा लगा कि इस युद्ध में हमारा विनाश ही है," कर्ण बोला।

"तुम कृष्ण की अगवानी के लिए नहीं गये थे क्या?"

"अरे नहीं! उलटे श्रीकृष्ण ही मुझसे मिलने के लिए मेरे महल में आये थे," दुर्योधन बोला।

"तुमसे उसने क्या कहा!"

"मुझे समझाने के लिए उसने कितने ही आदमी खड़े कर दिये। मुझे भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर सभी ने कहा; पिताजी ने भी बहुत कुछ कहा; मेरी माता ने भी कहा; और अन्त में श्रीकृष्ण ने भी कहा," दुर्योधन बोला।

"इतने सारे आदमियों के साथ तुम टक्कर ले सके, यही मेरे लिए बहुत खुशी की बात है," शकुनि बोला।

"मामा, ज्यों-ज्यों विचार करता जाता हूं, त्यों-त्यों मुझे हम लोगों का विचार ही सत्य लगता है। पांडव हम लोगों को डराकर अपना आधा हिस्सा प्राप्त कर लेना चाहते हैं। बाकी तो युद्ध करना उनके बस की बात नही मालूम होता," दुर्योधन बोला।

"मैं तो कहता ही हूं। ऐसे-ऐसे दूतों को भेजना और पंचायत करना क्या लड़ाई के लक्षण हैं?" शकुनि बोला।

"आधा राज्य दो, चौथाई राज्य दो, पचास गांव दो, पच्चीस

गांव दो, दस गांव दो, पांच गांव दो, एक गांव दो, ऐसी-ऐसी बातें करते हैं। और तिसपर भीष्म और द्रोण तो मुझे ही कहते रहते थे कि दुर्योधन, तुम नहीं समझोगे तो अब सबका काल ही आ रहा है," दुर्योधन बोला।

"वे बूढ़े हो गये हैं न, इसलिए उनको तो मौत ही दिखाई देती है; इस कारण ये लोग अपनी मौत को दूसरे के सिर डालकर जीने की आशा रख रहे हैं। काल तो उनका आया है," शकुनि बोला।

"फिर तुमने उनको क्या जवाब दिया ?" दु:शासन ने बात जानने की उत्सुकता से पूछा।

"मैंने तो मिलते ही श्रीकृष्ण को आड़े हाथों लिया। कहा कि आपने विदुर के यहां भोजन किया और मेरे यहां नहीं। तटस्थ होते हुए भी आप ऐसा पक्षपात करते हैं ?" दुर्योधन बोला।

"कृष्ण ने तुम्हारे यहां भोजन नहीं किया, इसका तुझे बुरा लगा मालूम होता है। क्यों न ?" शकुनि ने मजाक किया।

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं थी। उनके साथ बातचीत करने को जरा एक बहाना मिल गया," दुर्योधन बोला।

"लेकिन खास बात क्या हुई ?"

"श्रीकृष्ण ने मुझे बहुत समझाया, धमकाया, भीम अर्जुन को मेरे सामने रक्खा, द्रौपदी को सामने रखा, धर्म-अधर्म की बहुत-सी बातें कीं, थोड़ी-सी स्तुति भी की, एकता की बातें कीं, एकता के गुण बताये और पांडवों की ओर से अन्त में पांच गांवों की मांग पेश की," दुर्योधन बोला।

"तुमने क्या जवाब दिया ?"

"मैंने तो उनसे कह दिया कि सुई की नोक जितनी जमीन भी मैं पांडवों को नहीं देनेवाला हूं," दुर्योधन बोला।

"बहुत अच्छा जवाब दिया," कर्ण बोला।

"और अब कुछ लेना हो तो वह कुरुक्षेत्र के मैदान में ले लो, अब या तो दुर्योधन पृथ्वी का सम्राट् होगा या युधिष्ठिर होगा। या तो भानुमती ही पृथ्वी की रानी बनेगी या फिर द्रुपद की लड़की ही बनेगी। इन दोनों

के बीच तीसरा कोई मध्यम मार्ग है ही नहीं," दुर्योधन बोला।

"लेकिन कृष्ण क्या बोले ?"

"बोलते क्या ? वहां श्रीकृष्ण की हां में हां मिलाने वाले बहुत से मौजूद थे। उन्होंने तो महाराज को ऐसी सलाह दी कि दुर्योधन को पकड़ कर पांडवों के सुपुर्द कर दो तो कुरुकुल नष्ट होने से बच जायगा। माता गांधारी को भी यही सूझा था," दुर्योधन बोला।

"फिर तुझे बांधा क्या ?"

"अरे अब दुर्योधन को बांधना सहज नहीं है। आज दुर्योधन के पीछे ग्यारह अक्षौहिणी सेना का बल है। वे दिन अब चले गये," दुर्योधन बोला।

"भाई साहब तो सभा में से गुस्सा होकर चले आये थे,"

"चला न आऊं ? ऐसा अपमान कहां तक सहन करता रहूं ? मैंने तो हम लोगों की सलाह के अनुसार श्रीकृष्ण को भी कैद कर लिया होता।" दुर्योधन बोला।

"हां, उसका क्या हुआ ? तुमने कृष्ण को कैद क्यों नहीं किया ?"

"तैयारी तो उसके पकड़ने की सब कर रक्खी थी, लेकिन कृष्ण को सब मालूम हो गया इसलिए....... ।"

"मालूम होगया तो इससे क्या ?" दुःशासन बोला।

"लेकिन वह तो अपना जाल फैलाने लगा न ? उन्होंने सबकी आंखों में ऐसा कुछ जादू कर दिया कि जितने लोग वहां थे उन सबको एक बड़ा-सा राक्षस जैसा शरीर दिखायी देने लगा। उसका मुंह आकाश में पहुंच गया और उसके पेट में कितने ही लोग समा जाने लगे। सभा में जो ऋषि-मुनि आये हुए थे वे सब यह देखकर डर गये और स्तुति करने लगे", दुर्योधन बोला।

"तुम डर गये क्या ?"

"नहीं तो, मुझे तो ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं दिया। मुझे तो वह अपने जैसे दो हाथ दो पैर वाले कृष्ण ही दिखाई दिये। लेकिन ये उनके

भगत लोग बस उठ खड़े हुए, और उनमें भीष्म-द्रोण तो पहिले थे। पिताजी बेचारे देख नहीं सकते इसलिए उनको तो विदुर काका जो कहें वही बात सच्ची थी।" दुर्योधन बोला।

"तब तो श्रीकृष्ण ने बड़ा ही गजब किया?"

"इसमें गजब की क्या बात थी? संधि की बात तो एक ओर रह गयी और वह सारी सभा मानो कृष्ण का मन्दिर बन गयी; लेकिन मैं भी तो ऐसा पक्का था कि एक का दो नहीं हुआ," दुर्योधन बोला।

"अब तू मेरा सच्चा भान्जा होगया," शकुनि ने दुर्योधन की पीठ ठोंकी। "अब युद्ध होगा, यह निश्चित है। दुर्योधन, आज तक तो तुम दूसरों की बुद्धि के अनुसार चलते थे, लेकिन आज तुम अपनी बुद्धि के बल पर चलने लगे हो—यही उत्कर्ष का चिह्न है,"

"तो मामा, अब तैयार होजाओ। कर्ण, तुम भी तैयारी करो,"

"मुझे तो आप तैयार ही समझिये," कर्ण ने कहा।

"मामा, इस कर्ण को भी बहकाने को कृष्ण अपने साथ कुछ दूर ले गये थे,"

"कर्ण बहकाने में आने वाला आदमी नहीं है। वह बहुत पक्का है।"

"मामा, मैंने तो सभा में साफ-साफ कह दिया है कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, ग्यारह अक्षौहिणी सेना आदि जिन-जिन को युद्ध में से चला जाना हो वे खुशी से निकल जायं। मैं, मामा शकुनि, कर्ण, दु:शासन ये चार आदमी युद्ध कर लेंगे, और जिन्दा रहे तो राज्य भोगेंगे, नहीं तो क्षत्रियों की तरह स्वर्ग में जायंगे," दुर्योधन बोला।

"तूने जो कहा वह बिलकुल ठीक है। क्यों कर्ण," शकुनि ने कहा।

"कर्ण तो आपके अधीन है। मैंने तो आपको कह दिया है कि हमारे सबके हित के लिए भीष्म जब तक सेना के आगे रहेंगे तब तक मैं पीछे रहूंगा। और फिर तो मैं हूं ही। महाराज, इस कर्ण ने अपने को आपके हवाले कर दिया है, यही समझें," कर्ण ने कहा।

"दुर्योधन, कर्ण जो कुछ कहता है वह बिलकुल ठीक है। तुम जाकर

भीष्म को समझा दो कि सेनापति तो आप ही होंगे। और भीष्म हां कर ही लेंगे। हमें भीष्म से काम है और इसी भीष्म के हाथों ही पांडवों का नाश करवाना है। यह बूढ़ा हमारे खूब काम आयेगा। यह है तब तक तो पांडवों की ताकत नहीं कि हमें कुछ भी नुकसान पहुंचा सके। लेकिन तुझे भीष्म को सम्हालना पड़ेगा," शकुनि बोला।

"यह तो भाई साहब को खूब आता है। यह जब गुस्सा करते हैं तब तो मैं भी दङ्ग रह जाता हूँ। देखो न, सभा में से जब यह गुस्सा होकर चले गये तब सबके मानो प्राण सूख गये थे और सब आपस में न जाने क्या चर्चा करने लगे थे। और लोग तो सामने वाले की मीठी-मीठी तारीफ करके उसको वश में रखने की कोशिश करते हैं, लेकिन भाई साहब तो भीष्म जैसों को गुस्से में कठोर शब्द कह कर वश में रखते हैं। इसलिए इस बारे में भाई साहब को कुछ सिखाने की जरूरत नहीं है," दुःशासन ने कहा।

"तू भी यह विद्या अपने भाई से सीख ले न!"

"इतना इसका हौसला अभी नहीं है!" दुर्योधन बोला।

"तो अब हमें विदा होनी चाहिए,"

"अच्छा, कल सुबह हम लोग युद्ध के मैदान में मिलेंगे,"

"लेकिन सेनापति भीष्म ही हों?"

"हां-हां, भीष्म ही। कर्ण दो दिन बाद ही सही, क्यों ठीक है न?"

"हां, यही,"

और चंडाल चौकड़ी फिर विदा हुई।

: ५ :

सेनापति पितामह के पास

महाभारत का युद्ध शुरू हुए पूरे आठ दिन होगये हैं। एक ओर से भीष्म और दूसरी ओर से धृष्टद्युम्न आमने-सामने की सेनाओं का संहार कर रहे हैं। तिसपर आज तो भीम और अर्जुन ने कौरव सेना के छक्के छुड़ा दिये। अर्जुन प्रलयकाल की अग्नि की तरह चारों ओर घूम रहा था और वृद्ध भीष्म को अपने वृद्ध होने की याद दिला रहा था। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य वगैरा ने बहुत ही परिश्रम किया। पर आज तो कौरव सेना में गड़बड़ी मच ही गयी और इसी भाग-दौड़ में कौरव सेना पर सूर्य अन्तिम निगाह डालकर अस्त हुआ।

महाराज दुर्योधन आज बहुत अस्वस्थ-से थे। युद्ध इतना लम्बा बढ़ेगा इसकी उनको उम्मीद न थी। रात को डेरे में जाकर वह पलङ्ग पर लेट गये; लेकिन उनको नींद नहीं आई। आधी रात के समय वह उठे और सीधे भीष्म के तम्बू में गये।

"दुर्योधन, इतनी रात को यहां कैसे ?" भीष्म ने पूछा।

"पितामह, यहां न आऊं तो जाऊं कहां ? क्या करूं ?" दुर्योधन ने कहा।

"क्या कोई ख़ास बात होगई ?"

"पितामह," दुर्योधन भीष्म के पैरों के पास आकर बैठ गया।

"राजन्, राजन्," भीष्म ने दुर्योधन के सिर पर हाथ रखा।

"पितामह, मैं अब आपका 'बेटा दुर्योधन' बदल कर 'राजन्' होगया न ! अब तो हद हो गयी है," दुर्योधन बोला।

"भाई, तुम क्यों आये हो, यह तो बताओ ?" भीष्म ने पूछा।

"आपसे यह कहां छिपा है ? पितामह, मुझे अगर पहले ही ऐसा मालूम होता तो मैं युद्ध करता ही नहीं। और पांडवों को हस्तिनापुर का राज्य सौंपकर जंगल में चला गया होता," दुर्योधन बोला।

"लेकिन तू मुझे बतला तो कि क्या हुआ ?"

"बताऊं क्या ? लेकिन पितामह, सच-सच कह दूँ। देखिए, बुरा न मानिएगा। आप पांडवों के साथ मन लगाकर युद्ध नहीं करते हैं," दुर्योधन ने साफ़-साफ़ कह दिया।

"दुर्योधन, क्या मैं यह सच सुन रहा हूं ?"

"जो कुछ भी आप सुन रहे हैं ठीक सुन रहे हैं! आपके मन में पांडवों के साथ पक्षपात है इसलिए आप उनको मार नहीं रहे हैं," दुर्योधन बोला।

"मैं पांडवों को मारता नहीं? पांडवों को मारने के लिए कोई त्रिलोक में भी समर्थ है। अर्जुन के रथ पर कौन बैठा है, इसका भी तुझे ख़याल है ?" भीष्म दुर्योधन को समझाने लगे।

"मुझे इसका तो बराबर ख़याल है। श्रीकृष्ण ने तो लड़ाई में शस्त्र न लेने की प्रतिज्ञा मेरे सामने ली थी। उनकी प्रतिज्ञा आपने तुड़वायी, इसको मैं क्या नहीं जानता ?" दुर्योधन बोला।

"बेटा दुर्योधन, तुम भूल कर रहे हो!"

"भूल तो तभी से होगयी है जब मैंने युद्ध ठाना और अपना जीवन आपके हाथों में सौंप दिया," दुर्योधन अपने पाँसे फेंकने लगा। "पांडवों का पक्ष लेकर आप इस तरह से हमारे योद्धाओं को शान्तिपूर्वक मरने देंगे, ऐसा मैंने कभी नहीं सोचा था।"

"तुझे ऐसा लगता है कि पांडवों के साथ पक्षपात के कारण मैं ऐसा कर रहा हूं ?" भीष्म ने कहा।

"पहले ऐसा न लगता। मे . भी मुझे ऐसी बातें कहते तो भी उनका कहना नहीं मानता। लेकिन आज तो मैं सब कुछ अपनी आंखों से देख रहा हूं, इसलिए माने बगैर कोई चारा भी तो नहीं है," दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन ! तुम्हारे ये वचन मेरे हृदय को बींध रहे हैं," भीष्म ने अकुलाकर कहा।

"इसके लिये मुझे बहुत दुःख है। लेकिन जो बात साफ़ है वह आपके सामने रखना जरूरी है," दुर्योधन बोला।

"लेकिन तेरी यह बात अगर झूठी पड़ गयी तो ?" भीष्म ने कहा।

'झूठी पड़ जाये ऐसा मैं मान ही नहीं सकता। लेकिन अब अगर ये बातें झूठी पड़ जायं तो मेरे जितनी खुशी और किसी को होगी भी नहीं," दुर्योधन बोला।

"तेरी बातें झूठी हैं, और झूठी ही पड़ेंगी।"

"हैं तो सत्य ही। जब झूठी पड़ जायंगी तब मैं उनको झूठी मान लूंगा।"

"पांडवों के साथ के अपने पक्षपात के कारण मैं मन लगाकर नहीं लड़ रहा हूं, क्या यह आक्षेप सत्य है ?" भीष्म को क्रोध आरहा था।

"सच्चा, सच्चा, और बिलकुल सच्चा। आपने अगर मन में निश्चय कर लिया होता तो लड़ाई पहले ही दिन ख़त्म होगई होती और आज मुझे सम्राट् हुए सात दिन होगये होते। लेकिन जब आप लोग ही मन से लड़ाई नहीं करते तो मैं क्या करूं ?" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, तुम सरासर अन्याय कर रहे हो !" भीष्म का हृदय अन्तर्वेदना से भर रहा था।

"पितामह, अन्याय आप पर हो रहा है या मुझपर ? युद्ध में हारेंगे तो भी आप पितामह तो मिटनेवाले हैं नहीं। आज आप दुर्योधन के पितामह हैं, तो कल जाकर भीम के पितामह हो जायंगे। बस सिर्फ यही फर्क रहेगा। लेकिन मेरे लिए तो यह जिंदगी और मौत का सवाल है," दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, ऐसा मत कह। यह युद्ध भीष्म के लिए भी जीवन का सौदा ही है," भीष्म उबल पड़े।

"ज़िन्दगी का सौदा होता तो रंग ही दूसरा होता।"

"दूसरा कैसा रंग ?"

"हां, दूसरा रंग। ज़िन्दगी का सौदा होता तो ये पांडव कभी के धूल

घाटते होते। आपने एक ही दिन जो हमला किया था तो श्रीकृष्ण तक को सोचना पड़ गया था। लेकिन आपको तो पांडवों को विजय दिल-वानी है सो दिलवाइये," दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, तुम्हारी आंखों पर चश्मा ही ऐसा चढ़ा है कि मैं जितना भी तुम्हारे लिए करता हूँ वह सब तुम्हें कम ही लगता है," भीष्म को ग्लानि हो रही थी।

"लगता ही है। बुरा तब न लगेगा जब कि अर्जुन इस युद्धभूमि में आपके हाथ मरेगा और पांडव निराश होकर वापस जायंगे," दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, तुम्हारी बुद्धि फिर गई है। अर्जुन को हराना तो खुद इन्द्र के लिए भी कठिन बात है। यह तुम जानते नहीं। इसका रथ जब तक श्रीकृष्ण हांक रहे हैं तब तक त्रिलोक में भी उसका बाल बांका करने वाला कोई नहीं है," भीष्म बोला।

"यह सब आप झूठ कह रहे हैं। हां, अर्जुन ने युद्ध के आरम्भ में आपको तथा द्रोण को पैरों में तीर छोड़कर प्रणाम किया इसलिए आपने उनको आशीर्वाद दिया है और इसलिए आप न मारें यह मैं समझ भी सकता हूँ," दुर्योधन बोला।

"क्षत्रिय को भला ऐसे आशीर्वाद होते हैं ?"

"तब तो आप इस प्रपंच को छोड़ दीजिए और पांडवों को मारिए,"

"दुर्योधन, तेरे इन शब्दों के पीछे कोई दूसरा बोल रहा है। या तो तेरे किसी सलाहकार ने तुझे बहकाया है, या तेरी मौत ही तुझसे यह बुलवा रही है," भीष्म ने कहा।

"जो बोल रहा है वह तो खुद दुर्योधन ही बोल रहा है। दूसरे की सलाह तभी मैं स्वीकार करता हूँ जब कि मुझे वह पसंद आती है। इस-लिए मैं जो कुछ बोलता हूँ और कहता हूँ उस सबकी जिम्मेदारी तो मुझ-पर ही है। मेरा कहना जब झूठा पड़ेगा तब मैं उसको भी कबूल कर लूंगा।"

"दुर्योधन, तेरे वचनों ने मुझे खूब घायल कर दिया जवानी में

मैंने कितने ही ऐसे वचनों को सहन किया है और मुझे जो कुछ भी योग्य लगा है वही किया है। लेकिन आज अब ऐसे वचनों को सहन करने की शक्ति मुझमें कम होगई है। इसलिए ः बहुत दुःख होता है। मुझे ऐसा लगता है कि दुर्योधन का यह अविश्वास कैसे दूर करूँ?" भीष्म बोले।

"इसका तो एक ही उपाय है। पाण्डव सेना को आप लड़ाई में तहस-नहस कर दें तो तुरन्त ही अविश्वास दूर हो जायगा। आपके हाथ में ही तो यह बात है," दुर्योधन बोला।

"तब फिर तुम जाओ। कल पांडव सेना को मैं एकदम तहस-नहस कर डालूंगा," भीष्म ने प्रतिज्ञा की।

"पितामह, जिस चीज को आप कर नहीं सकते उसकी प्रतिज्ञा क्यों कर रहे हैं ?"

"नहीं हो सकता ? कल तो होगा और अवश्य होगा।"

"इस समय तो आप कह रहे हैं, लेकिन कल जब सुबह अर्जुन और युधिष्ठिर को लड़ाई में सामने देखेंगे तब स्नेह और दया का स्रोत उमड़ पड़ेगा और आपके हाथ ढीले पड़ जायंगे," दुर्योधन ने कहा।

"दुर्योधन, मैं तुमसे कहता हूँ कि कल मेरा हाथ ढीला नहीं होगा। मुझे आज भी नहीं सूझ रहा है। शायद मेरी मृत्यु ही नजदीक आ रही हो लेकिन कल तो मैं ऐसा ही युद्ध करूंगा कि जिससे तुम्हारा अविश्वास दूर हो जायगा।"

"अच्छा, देखेंगे।"

"देखना था सो देख लिया। कल का भीष्म दूसरे ही प्रकार का होगा," भीष्म बोले।

"तब फिर कल रात को दुर्योधन को भी आप दूसरी ही बातें करते हुए पायेंगे। पितामह, अब मैं आज्ञा चाहता हूँ।"

"जाओ। अच्छी तरह से जाओ। तुम्हारे तीक्ष्ण वचनों से मैं आज घायल होगया हूँ। कल तो जैसा मैंने तुमसे कहा है उसके अनुसार मैं

पांडवों के छक्के छुड़ा ही दूंगा। लेकिन दुर्योधन, आज तुम्हारे वचनों को सुनकर मेरे अङ्ग ढीले पड़ गये हैं और मेरे युद्ध का सारा रस सूख गया है," भीष्म ने कहा।

"पितामह, युद्ध का रस तो पहले मेरा सूखेगा उसके बाद आपका। आपने तो कुरुराज्य को जीवन दिया है। उस पर तो मेरे जैसे कितने ही आते और चले जाते हैं। लेकिन आप उसमें से हट थोड़े ही सकते हैं।"

"आज तक ऐसा था। अब ऐसा नहीं है। मुझे अपना अन्तकाल नजदीक दिखाई देरहा है। तुम्हारे इन वचनों ने मुझे घायल कर दिया है और अब मैं इस दशा में क्यों पड़ा हूं यही समझ में नहीं आरहा है," भीष्म बोले।

"पितामह, आप तो सारे कुरुवंश की संस्कृति के रक्षक हैं। आपके कारण ही यह सारा वंश टिका हुआ है।"

"आज तक मैं भी ऐसा ही मानता था। इसीलिए तो तुम्हारे जैसे छोटे-छोटे बच्चे बड़े भी होगये तो भी मैं अपनी जगह से खिसक नहीं गया। लेकिन आज तो मेरा वह मोह हट रहा है। ऐसा ही मुझे लगता है, और मैं इस अठारह अक्षौहिणी सेना का नाश अपने सामने देख रहा हूं," भीष्म बोले।

"आप अगर कल बराबर युद्ध करेंगे तो मैं दूसरे ही दिन आपकी विजय देखूंगा।"

"कल तो मैं जरूर शत्रुओं की सेना को नष्ट करूंगा। मैंने जो कहा है उसे मैं मिथ्या नहीं करूंगा। लेकिन कल के दिन के बाद परसों का दिन भी उग रहा है। वह परसों का दिन कैसा अस्त होगा; वह तुम जानते हो? दुर्योधन तुमने बहुत बुरा किया।" भीष्म बोले।

"पितामह, परसों के दिन की बात परसों के दिन। कल की बात ही याद रखिये न!" दुर्योधन ने तो अपनी धृष्टता पर कमर कस ली थी।

"दुष्ट, तुझे अभी भी ऐसा लगता है कि मैं बदल जाऊंगा? पापी दुर्योधन! स्वार्थी दुर्योधन! जा, चला जा। मैं तुम्हारे पक्ष में रहा, यही

मैंने भूल की ? उसीसे ये सब बातें आज मैं सुन रहा हूं। जाओ, मैं तुम्हारे साथ अब ज्यादा बातें नहीं करना चाहता। कल भीष्म का पराक्रम देख लेना और परसों''''क्यों बोलूं? ज़बान पर शब्द लाने से क्या ?" भीष्म के होठ क्रोध से कांप रहे थे।

लेकिन दुर्योधन तो उसके पहले ही चला गया था।

: ६ :

गदा-युद्ध

"क्या यही तालाब है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"हां, यही। इसी को लोग द्वैतवन का तालाब कहते हैं," सहदेव बोला।

"इन लोगों को कैसे मालूम हुआ कि दुर्योधन इसमें है ?" युधिष्ठिर बोले।

"ये शिकारी लोग कहते थे कि हम तालाब के किनारे कपड़े धो रहे थे तब उस किनारे पर खड़े हुए तीन आदमी पानी के अन्दर किसी से बातें कर रहे थे। इससे हमें मालूम हुआ कि दुर्योधन तालाब में घुसा हुआ है," भीम ने कहा।

"यह ठीक है। किनारे खड़े हुए तीन आदमियों में से एक तो अश्वत्थामा ही होगा," अर्जुन ने कहा।

"एक अश्वत्थामा, दूसरा कृपाचार्य, तीसरा कृतवर्मा। ये ही तीन आदमी अभी तक जिन्दा हैं और चौथा दुर्योधन," युधिष्ठिर ने कहा।

"तो चलो, अब हम किसी तरह दुर्योधन को बाहर निकालें," भीम बोला।

"दुर्योधन, पापी दुर्योधन, तालाब में क्यों घुसकर बैठा है ?" युधिष्ठिर ने पुकारा। "इतनी बड़ी सेना का संहार करके इस जरा-से तालाब में छिपकर बैठना तुझे शोभा नहीं देता। बाहर आओ कौरवनाथ, और हमें हराकर राज्य करो। कुरुवंश में कोई इस तरह छिपकर बैठा हो ऐसा हमने नहीं सुना।"

"युधिष्ठिर !" पानी के अन्दर से धीर और गम्भीर आवाज आयी; "युधिष्ठिर, तुम अपनी सहज धीरता को क्यों खो रहे हो ? हरेक आदमी को एक-न-एक दिन अनावश्यक रूप से बकने का दिन आता ही है। एक दिन मैं चिल्लाया करता था, उसी तरह आज तुम्हारा बकने का दिन आया है। तो तुम जितनी चाहो बकवास कर लो।"

"ऐ अंधे के लड़के ! कौन बक-बक कर रहा है ? तू या युधिष्ठिर ?" भीम जोर से चिल्लाया, "बकवास छोड़कर लड़ाई में आजा।"

"भीमसेन, मैं राजपुत्र हूँ। जंगल के जानवरों के साथ बातें करने में मुझे जरा संकोच होता है," दुर्योधन ने ताना मारा।

"जंगली जानवर तो वह अन्धा कौरवराज है। अगर सच्चे बाप का बेटा है तो आजा बाहर," भीम ने कहा।

"दुर्योधन, भीम ठीक कह रहा है। यह सारा युद्ध तेरा खड़ा किया हुआ है। कर्ण, शकुनि और दुःशासन सब पृथ्वी पर सो गये हैं; इसलिए तुमको छिपकर नहीं रहना चाहिए। तुम बाहर आओ और युद्ध में हमें हराकर सारी पृथ्वी पर आनन्द के साथ राज्य करो," युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर, पांडवों में तुम ही एक अकेले धर्म जानने वाले हो, यह मैं जानता हूँ।"

"आज युधिष्ठिर धर्मात्मा होगये, क्यों ? और जुआ खेलते समय युधिष्ठिर धार्मिक नहीं थे ?" भीम बोला।

"तुम उसको बोलने तो दो," युधिष्ठिर ने भीमसेन को रोका "दुर्योधन, अब बोलो; मैं सुन रहा हूँ।"

"युधिष्ठिर, मैं अब बहुत थक गया हूँ; हताश होगया हूँ। मेरा रथ और घोड़े सब नष्ट होगये हैं। मैं शस्त्र-रहित हूं। जिरह और बख्तर कुछ भी नहीं रहा इस तरह निःशस्त्र होकर मैं तुम्हारे साथ कैसे लड़ सकता हूं। इसीलिए मैं यहां आकर छिपा हूं और अपना मौका देख रहा हूं," दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, तेरी बातें बिलकुल ठीक हैं। लेकिन तू बाहर आजा।

हम तुमको रथ और कवच देंगे, बख्तर देंगे, शस्त्र भी देंगे और तब तुम्हारे साथ युद्ध करेंगे। हम सब लोग युद्ध-शास्त्र के नियमों से परिचित हैं। हम लोग तुम्हें अधर्म से नहीं मारेंगे," युधिष्ठिर बोले।

"तब तो फिर मैं यह बाहर आया।"

ऐसा कहकर दुर्योधन—पहाड़ जैसा दुर्योधन—पानी के अन्दर से बाहर आया और हाथ में गदा लेकर उनके सामने खड़ा हो गया।

"ले यह कवच," युधिष्ठिर ने उसको एक कवच दिया।

"युधिष्ठिर, आप लोग तो बहुत हैं और मैं अकेला हूँ। मेरे साथी तो सब मर गये हैं। आप सब लोगों से मैं अकेला कैसे लड़ सकता हूँ?" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है। अगर तुम युद्ध ही करना चाहते हो तो हम पांचों पांडव सब एक-एक करके तुम्हारे साथ लड़ेंगे और हममें से किसी एक की हार सबकी हार समझी जायगी," युधिष्ठिर ने कहा।

"यही सच्चा धर्म-युद्ध है। मुझे यह बात मंजूर है," दुर्योधन बोला।

"तुम्हें क्यों न मंजूर होगा!" श्रीकृष्ण से न रहा गया। "तुमने ऐसे ही तो धर्म-युद्ध किये हैं इसलिए यह क्यों न मंजूर होगा? अकेले अभिमन्यु को छः-छः महारथियों ने मिलकर मारा था उस समय यह धर्म-युद्ध कहां गया था? युधिष्ठिर तो भोले हैं, इसीलिए तुमको उन्होंने हां कर दी। लेकिन इसके परिणाम पर विचार करने वाले दूसरे भी हैं।"

"मेरी समझ से तो पांडवों के अग्रणी युधिष्ठिर ही हैं। मैं आप लोगों से गदा-युद्ध करना चाहता हूं, इसलिए आपमें से जो कोई गदा-युद्ध करने की इच्छा रखता हो वह मेरे सामने आ जाय," दुर्योधन बोला।

"तुम्हारे साथ दूसरा और कौन गदा-युद्ध कर सकता है?" भीम ने आगे आकर कहा, "हम दोनों जन्म के मित्र रहे हैं; हम रात को सोने के पहले एक दूसरे को रोज याद कर लिया करते हैं। उसमें भी द्रौपदी ने हमारी मित्रता को और भी ज्यादा बढ़ा दिया है। इसका तो फिर पूछना ही क्या? एक ही बलराम के हम दोनों शिष्य भी हैं। दुर्योधन! आओ,

तुम्हारे साथ मैं गदा-युद्ध करने को तैयार हूं।" भीम ने ललकारा।

× × ×

भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध शुरू हुआ। भीम की ताकत और दुर्योधन की चपलता; दोनों एक-से-एक बढ़कर थे। फिर भी दुर्योधन बढ़कर था। सब पांडव इस गदा-युद्ध के प्रेक्षक थे। उनके गुरु बलराम भी संयोग से वहां आगये थे, इसलिए वह भी अपने दोनों शिष्यों के गदा-युद्ध को देखने के लिए रुक गये। कभी भीम गिरता तो कभी दुर्योधन। कोई एक दूसरे से हारे ऐसा न था। इसीलिए श्रीकृष्ण को चिन्ता हुई।

"अर्जुन!" एक कोने में अर्जुन को ले जाकर श्रीकृष्ण ने कहा। "इस युद्ध में भीम दुर्योधन से जीते यह मुश्किल मालूम पड़ता है। किसी भी एक की हार सबकी ही हार होगी, ऐसा कहकर युधिष्ठिर ने भारी भूल की है।"

"हां, यह तो मैं भी समझता हूँ। देखिए न, दुर्योधन भीम के दांव को तो बचा लेता है और भीम के दांव में आता ही नहीं," अर्जुन बोला।

"अर्जुन, मुझे तो एक बात सूझती है।"

"कौन-सी?"

"भीम अगर दुर्योधन की जांघ में गदा मारे तो दुर्योधन गिर जायगा," श्रीकृष्ण ने कहा।

"यह तो भीम जानता है।"

"जानता तो है, लेकिन इस समय भूल गया मालूम होता है।"

"तो उसको याद दिलाऊँ? लेकिन यह अधर्म-युद्ध नहीं होगा?" अर्जुन ने शंका की।

"यह कैसा युद्ध माना जायगा, यह बाद में देख लेंगे। एक बार दुर्योधन को गिरने दो। अर्जुन, तू ताल ठोंक तो शायद भीम को याद आजायगी।"

अर्जुन ने अपनी दाईं जांघ पर ताल ठोंकी कि भीम समझ गया और दुर्योधन की जांघ पर इतनी जोर से गदा मारी कि वह एक ही साथ

में धरती पर गिर पड़ा और उसका पैर एकदम टूट गया। पांडवों ने बड़े जोरों से हर्षनाद किया।

पर बलराम से यह सहन नहीं हो सका।

"अरे ओ कृष्ण, इस भीम ने दुर्योधन की जांघ में गदा मारी, यह अधर्म किया है। मैं तो गदा-युद्ध का आचार्य हूँ। मेरे देखते-देखते ऐसा अधर्म हो, यह मुझसे कैसे देखा जायगा?" इतना कह कर बलराम ने अपना हल भीम के मारने के लिए उठाया।

लेकिन श्रीकृष्ण तुरन्त ही बीच में पड़ गये, "भाई-साहब, भीम ने अधर्म किया है, इसमें कोई शङ्का नहीं; लेकिन दुर्योधन के अधर्म की तो सीमा ही न थी। दूसरे, भीम ने दुर्योधन की जांघ को तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी, इस पर भी तो आपको ध्यान देना चाहिए। भीम का अधर्म तो है ही, लेकिन क्षमा के योग्य है।"

श्रीकृष्ण का यह कहना बलराम को अच्छा नहीं लगा, इसलिए गुस्से में आकर वह वहां से चले गये।

पाण्डव भी दुर्योधन को तालाब के किनारे तड़पते हुए छोड़कर रवाना हुए।

बेचारा कौरवराज कौवों और चीलों को उड़ाता हुआ वहां अपनी अन्तिम सांसें लेता हुआ पड़ा रहा।

इतने में दूर से अश्वत्थामा के रथ की आवाज सुनाई देने लगी।

: ७ :

जीवन की अन्तिम घड़ी

"कौन है, अश्वत्थामा ?"

"जी महाराज !"

"तुम आगये ? कुछ हुआ क्या ?"

"कुछ क्यों; सब कुछ होगया। और सब कुछ से भी कुछ ज्यादा हुआ," अश्वत्थामा सन्तोष से बोला।

"पांचालों को मारा !"

"सब पांचालों को। धृष्टद्युम्न को तो पलङ्ग पर सोते में ही खत्म कर दिया !" पांचालों को तो चुन-चुन कर मारा और साथ ही.......।"

"और साथ ही क्या ?"

"और साथ ही पांचाली के पांचों पुत्रों को भी खत्म कर दिया !" अश्वत्थामा ने बात पूरी की।

"दुर्योधन ने मुंह मोड़कर कहा, 'अरेरे ! गुरुपुत्र, तुमने बहुत बुरा किया।"

"मुझे तो द्रुपद का नाम पृथ्वी पर से मिटा देना था," अश्वत्थामा बोला।

"उन बेचारों ने हम लोगों का क्या बिगाड़ा था ?"

"जितना अभिमन्यु और घटोत्कच ने बिगाड़ा था उससे कुछ कम नहीं," अश्वत्थामा बोला।

"वे अगर जिन्दा रहते तो समय आने पर हमें पिण्ड देते," दुर्योधन लाचारी से बोला।

"आपको पिंड देते यह बात तो सही है पर द्रुपद को भी तो देते न ?" अश्वत्थामा चिढ़ गया।

"ठीक; तो जो कुछ हुआ वह अच्छा ही हुआ। आज सब लोग मृत्यु के मार्ग पर चल निकले हैं, इसमें कौन पीछे रहेगा यह कहा नहीं जा सकता"

दुर्योधन बोला, "अश्वत्थामा ! मेरी पीड़ा बढ़ती जा रही है। अब मैं चला ही समझो। सुबह होने को है। अगर पांडवों को मालूम होगया तो तुम्हारा पीछा किये बगैर वे नहीं रहेंगे,"

"महाराज, मेरी चिन्ता न कीजिए। आपका अंत समय निश्चिन्त और सुख-रूप हो, यही मेरी तीव्र इच्छा है।"

"मेरा अवसान? आज तक कितने ही अवसानों को मैंने अनुभव कर लिया और उन सब अवसानों का निष्कर्ष आज यह अंतिम अवसान है। अश्वत्थामा, पांचाल मारे गये इसलिए हृदय की आग तो कुछ शान्त हुई है। अब मुझे जरा बिठा दो तो मैं इस कुरुक्षेत्र के मैदान में जो अठारह अक्षौहिणी सेना सोई हुई है उस पर एक अंतिम नज़र डाल लूं," दुर्योधन बोला।

"महाराज, यह कुरुक्षेत्र नहीं, यह तो समन्त पञ्चक है। कहें तो आपको उठाकर कुरुक्षेत्र में ले चलूं," अश्वत्थामा ने कहा।

"इतना समय दुर्योधन के खाते में जमा होगा ऐसा दिखाई नहीं देता। कर्ण और शकुनि मुझे बुला रहे हैं," दुर्योधन ने ऊपर आकाश की ओर देखकर कहा।

"महाराज, मुझे और कुछ कहना है !"

"कहने को तो बहुत है अश्वत्थामा ! कह सकूं तो इस हृदय का भार कुछ हलका हो जाय। लेकिन बोला नहीं जाता।"

"जितना कह सकते हो, उतना ही कहिए महाराज !"

"अश्वत्थामा, हृदय के होंठ बन्द होते जारहे हैं। कैसे कहूं ? गुरुपुत्र, यह स्यार मेरा हाथ चाट रहा है, इसे जरा दूर तो भगा दो," दुर्योधन ने कहा।

"लीजिये महाराज !"

"अश्वत्थामा, यह सियार ही तुझे कहेगा कि आज कुरुराज का हाथ चाटने की हिम्मत इसको कहां से आगई ? यह मेरा हाथ ! इसी हाथ से भीम को मैंने लड्डू खिलाये थे; इसी हाथ से भानुमति का पाणिग्रहण